पर्याभाष-2018

तकनीकी पर्यावरणीय लेख - अंक ६

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

क्षेत्रीय निदेशालय (मध्य)

भोपाल

Dr. Prashant Gargava
Member Secretary
डॉ. प्रशांत गार्गव
सदस्य सचिव

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड
CENTRAL POLLUTION CONTROL BOARD
पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय भारत सरकार
MINISTRY OF ENVIRONMENT, FOREST & CLIMATE CHANGE GOVT. OF INDIA

संदेश

मुझे हर्ष है कि केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल द्वारा "पर्यभाष" नामक पत्रिका प्रकाशित की जा रही है।

भाषा किसी भी देश के साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, एवं दार्शनिक पहलुओं को जानने व समझने का सशक्त एवं प्रभावी माध्यम होती है। राजभाषा के रूप में हिन्दी को अपनाए लगभग छ: दशक हो गए हैं। 14 सितम्बर 1949 को भारतीय संघ की राजभाषा बनने के बाद से हिन्दी के प्रयोग क्रमिक रूप से बढ़ा है किन्तु राजभाषा विभाग के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में संयुक्त प्रयास करने की आवश्यकता है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के समस्त अधिकारियों/कर्मचारियों के मध्य परस्पर समन्वय एवं संवाद स्थापित करने एवं राजभाषा हिन्दी में तकनीकी एवं वैज्ञानिक मौलिक लेखन की क्षमता विकसित करने में पर्यभाष एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मुझे प्रसन्नता है कि केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल को राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा राजभाषा में श्रेष्ठ कार्य निष्पादन के लिए मध्य क्षेत्र का वर्ष 2014-15, 2015-16 एवं 2016-17 में निरंतर पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

इस अवसर पर मैं क्षेत्रीय निदेशक, भोपाल एवं संबंधित सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि "पर्यभाष" पत्रिका पर्यावरण एवं राजभाषा हिन्दी को सहज रूप में प्रचारित करने की दिशा में सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा किए गए सफल प्रयास के रूप में सिद्ध होगी।

इस पत्रिका के प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

12.09.18

डॉ. प्रशांत गार्गव

'परिवेश भवन', सी.बी.डी.-कम-ऑफिस कॉम्प्लैक्स, पूर्वी अर्जुन नगर, दिल्ली-110 032
'PARIVESH BHAWAN', C.B.D.-CUM-OFFICE COMPLEX, EAST ARJUN NAGAR, DELHI-110 032
PHONE: 011-22303655 TEL./FAX: 91-11-22307078, e-mail : prashant.cpcb@gov.in | mscb.cpcb@gov.in

संदेश

क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल की पत्रिका 'पर्याभाष' के छठवें अंक को हिन्दी दिवस 14 सितंबर, 2018 के अवसर पर आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। कार्यालय का सदैव प्रयास रहा है कि राजभाषा का पर्यावरणीय तकनीकी लेखन के क्षेत्र में भी उपयोग हो ताकि तकनीकी विषय कि क्लिष्ट भाषा को सहज रूप से जन सामान्य को समझाया जा सके।

पर्याभाष के इस अंक में हाल ही में जारी जैव ईंधन नीति, एंटीबायोटिक के प्रभाव, जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ प्रबंधन, राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम, जीएम (जेनेटिकली मॉडिफाइड) उत्पाद, पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन, पर्यावर्णीय शिक्षा, प्लास्टिक प्रदूषण, दीर्घोपयोगी विकास की संकल्पना आदि समसामयिक विषयों को समाहित किया गया है।

इस सार्थक प्रयास को मूर्तरुप देने में मुख्यालय व क्षेत्रीय निदेशालयों के सभी अधिकारियों/कर्मचारियों, लेखकों व प्रकाशन में सहभागियों को उनके स्वत: स्फुर्त प्रयास हेतु धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि आगामी अंकों में भी वे राजभाषा हिन्दी में अपने तकनीकी लेखों के माध्यम से पत्रिका प्रकाशन हेतु अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

डॉ.पी.के.बेहेरा
क्षेत्रीय निदेशक
केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

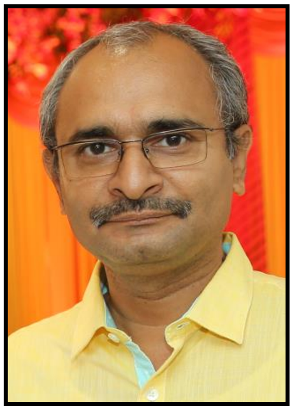

संयोजक की अभिव्यक्ति ......

मानननीय सदस्य सचिव व क्षेत्रीय निदेशक की प्रेरणा से पर्याभाष-2018 का यह अंक संकलित करना मेरे लिए सम्मान की बात है। भारत एक बहुभाषी देश है तथा सभी भाषाओं के सम्मान के साथ संघ कि राजभाषा कि निरंतर वृद्धि हो तथा तकनीकी क्षेत्र में भी मौलिक लेखन जारी रहे इस उद्देश्य से क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल द्वारा पर्यभाष पत्रिका का शुभारंभ 2012 में किया था जो लेखकों के सहयोग से अनवरत जारी है।

हिंदी में तकनीकी लेखन में सामान्यतः सभी की इच्छा व रुचि होती है, लेकिन हम अपने दैनिक कार्यालयीन कार्यों, निरीक्षण, प्रबोधन व न्यायालीन कार्यों में इतने व्यस्त हो जाते हैं, कि खुद की लेखन संबंधी सृजनात्मकता प्रकट नहीं कर पाते है। इस पत्रिका के माध्यम से तकनीकी हिंदी लेखन की क्षमता को पुनः उजागर करने का प्रयास किया गया है।

आशा है पर्याभाष के यह अंक आपको पसंद आएगा तथा भविष्य में इसके प्रकाशन हेतु लेखकों एवं पाठकों का स्नेह एवं सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

कोई भी कृति संपूर्ण नहीं होती, अतः आगामी अंक को और अधिक ज्ञानवर्धक व सार्थक बनाने हेतु आपके बहुमूल्य लेख एवं सुझाव सदैव सादर आमंत्रित रहेंगे।

डॉ.अनूप चतुर्वेदी
वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक
क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल

डॉ.पी.के.बेहेरा क्षेत्रीय निदेशक द्वारा कार्यालय द्वारा राजभाषा हिन्दी में श्रेष्ठ कार्य निष्पादन हेतु भारत सरकार, राजभाषा विभाग गृह मंत्रालय द्वारा प्रदत्त क्षेत्रीय राजभाषा पुरस्कार (2016-17) प्राप्त किया।

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विवरण	प्रष्ठ क्रमांक
01	**जैव ईंधन व राष्ट्रीय जैव ईंधन नीति-2018** श्री एस.सुरेश, क्षेत्रीय निदेशक क्षेत्रीय निदेशालय (दक्षिण) बेंगलुरु	1 - 7
02	**जलवायु परिवर्तन - समझौते एवं सम्मेलन** श्री आर.सी.सक्सेना, क्षेत्रीय निदेशक,कोलकाता श्री अवनीन्द्र कुमार, एस.एस.ए, क्षेत्रीय निदेशालय,कोलकाता श्री अजय दुबे जे.एस.ए, क्षेत्रीय निदेशालय,कोलकाता	8 - 12
03	**मरुस्थलीकरण एक वैश्विक समस्या** डॉ.पी.के.बेहेरा, क्षेत्रीय निदेशक, भोपाल	13 - 16
04	**सुपरबग - एंटीबॉयोटिक का एक दुष्प्रभाव** श्रीबी.आर.नायडू, क्षेत्रीय निदेशक ,वडोदरा श्री प्रसून गार्गव' वैज्ञानिक 'ई' क्षेत्रीय निदेशालय'वडोदरा	17 - 22
05	**भूमि प्रदूषण की रोकथाम और समाधान** डॉ.आर.पी.मिश्रा, वैज्ञानिक 'घ' क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल श्री मिलिंद निमजे, वैज्ञानिक 'ख' क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल	23 - 26
06	**शहरी युग में इकोलोजी** श्री शीतल प्रसाद, प्रशासनिक अधिकारी,, मुख्यालय दिल्ली श्रीमती फरजना ख़ान डी.ई.ओ. क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल	27 - 29
07	**क्या है जीएम (जेनेटिकली मॉडिफाइड) उत्पाद?** श्री नृपेन्द्र सेमवाल, वैज्ञानिक 'ख' क्षेत्रीय निदेशालय, वडोदरा श्री मनोज शर्मा, वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक, वडोदरा	30 - 33
08	**प्लास्टिक प्रदूषण वर्तमान परिपेक्ष्य में** डॉ.चन्द्रकान्त दीक्षित, वैज्ञानिक 'ख' क्षेत्रीय निदेशालय लखनऊ श्री. आर.के.मिश्रा जे.एस.ए, क्षेत्रीय निदेशालय, लखनऊ	34 - 37

09	**क्यों आवश्यक है अपशिष्ट जल का पुनर्प्रयोग ?** श्री विनय उपाध्याय, वैज्ञानिक 'ख' आई.पी.सी।-V II प्रभाग, दिल्ली	38 - 41
10	**पर्यावरण शिक्षा** श्री.एस.डी.बोकड़े, अनुभाग अधिकारी,क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल श्री.अनिल कुमार, लेखा सहायक,क्षेत्रीयनिदेशालय, भोपाल	42 - 45
11	**निर्माण एवं विध्वंस अपशिष्ट प्रसंस्करण संयंत्र** डॉ. योगेंद्र कुमार सक्सेना,वैज्ञानिक 'ख' सरकारी विश्लेषक क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल	46 - 54
12	**पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन - एक परिचय** डॉ. दीपक गौतम, अनुसंधान अधिकारी, पर्यावरण,वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय दिल्ली	55 - 61
13	**जैव-चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन - वर्तमान परिदृश्य** डॉ. अनूप चतुर्वेदी, वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक, क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल	62 - 66
14	**राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी)** श्रीमती साक्षी बत्रा, वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक	67 - 70
15	**स्वच्छता तकनीकें एवं अपशिष्ट प्रबंधन के 5-R सिद्धांत** श्री संजय कुमार मुकाती,वरीष्ठ वैज्ञानिक सहायक, क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल	71 - 74
16	**दीर्घोपयोगी विकास की संकल्पना** श्री राजीव शर्मा, वरिष्ठ तकनीशियन, क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल श्री प्रहलाद बघेल, क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल	75 - 79
17	**अपशिष्ट प्रबंधन के आयाम** श्रीमती मीनल गुप्ता जे.आर.एफ. केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, वडोदरा, गुजरात	80 - 82

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के है, सरकार अथवा केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का उससे सहमत होना आवश्यक नही है।

जैव ईंधन व राष्ट्रीय जैव ईंधन नीति-2018

श्री एस.सुरेश, क्षेत्रीय निदेशक
क्षेत्रीय निदेशालय (दक्षिण) बेंगलुरु

10 अगस्त, 2018 को गैर जीवाश्म ईंधन (हरी ईंधन) के बारे में जागरूकता पैदा करने के उद्देश्य से दुनिया भर में विश्व जैव-ईंधन दिवस मनाया जाता है। 10 अगस्त 1893 को पहली बार सर रुदाल्फ डीजल (डीजल इंजन के आविष्कारक) ने मूंगफली के तेल से यांत्रिक इंजन को सफलतापूर्वक चलाया था। इसके बाद उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि अगली सदी से ईंधन से चलने वाले यंत्र इस्तेमाल में आने लगेंगे। ऐसे में डीजल द्वारा 10 अगस्त 1893 को पहली बार तेल से यांत्रिक इंजन को चलाने की वजह से इसी दिन हर साल विश्व जैव ईंधन दिवस मनाया जाने लगा। जैव ऊर्जा फसलों, पेडों, पौधों, गोबर, मानव-मल आदि जैविक वस्तुओं (बायोमास) में निहित उर्जा को कहते हैं। इनका इस्तेमाल करके उष्मा, विद्युत या गतिज ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है। धरातल पर विद्यमान सम्पूर्ण वनस्पति और जन्तु पदार्थ को 'बायोमास' कहते हैं। ये प्राकृतिक तौर से नष्ट होने वाला और सल्फर और गंध से पूर्णतया मुक्त है।

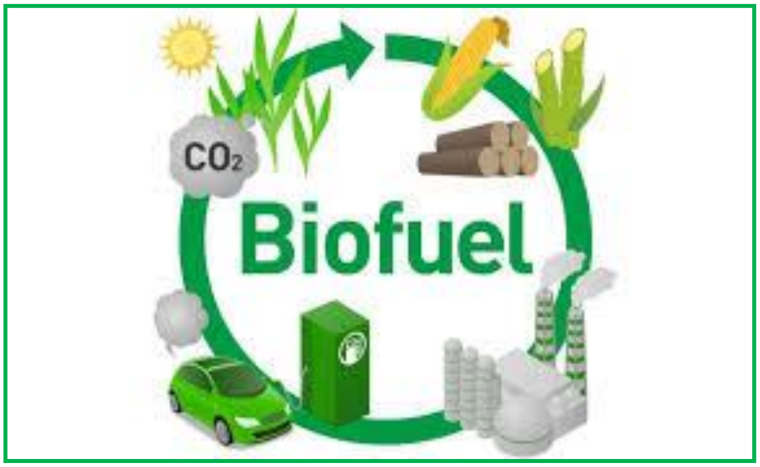

भारत के राजपत्र में प्रकाशित भारत सरकार (कारोबार का आबंटन) तीन सौ पैंतीसवें संशोधन नियम, 2017 के तहत केन्द्र सरकार वर्ष 2009 में नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय के जरिए लागू की गई है जो एक संशोधित जैव ईंधन नीति-2018 है।

राष्ट्रीय जैव ईंधन नीति-2018 के प्रमुख बिन्दु :

1. भारत दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है और आगामी कुछ दशकों तक जनसांख्यिकीय लाभ भी इसे मिलता रहेगा। विकास का उद्देश्य समावेश पर केंद्रित है, समावेश अर्थात राष्ट्रीय विकास, प्रौद्योगिकी उन्नयन एवं क्षमता निर्माण, आर्थिक विकास, इक्विटी और मानव कल्याण का साझा विजन। देश की ऊर्जा नीति का उद्देश्य ऊर्जा क्षेत्र में सरकार की महत्वाकांक्षी घोषणाओं को पूरा करना है, परंपरागत या जीवाश्म ईंधन

संसाधन सीमित, गैर- नवीकरणीय और प्रदूषणकारी हैं, इसलिए इनका समझदारी से उपयोग किए जाने की आवश्यकता है। जबकि दूसरी ओर, नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन स्वदेशी, गैर प्रदूषणकारी और वास्तव में अक्षय हैं। राष्ट्रीय जैव ईंधन नीति - 2018, जैव ईंधन पर पहले की राष्ट्रीय नीति की उपलब्धियों पर आधारित है और नवीकरणीय क्षेत्र में उभरती हुई विकास की पुन- परिभाषित भूमिका के अनुरूप नए एजेंडे का निर्माण करती है।

2. विश्व बाजार में कच्चे तेल की कीमत में उतार-चढ़ाव होता रहा है। इस तरह के उतार-चढ़ाव दुनिया भर की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में, विशेष रूप से, विकासशील देशों पर दबाव डाल रहे हैं। सड़क परिवहन क्षेत्र भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 6.7% है। वर्तमान में, परिवहन ईंधन की 72% अनुमानित मांग केवल डीजल और इसके बाद पेट्रोल 23% मांग और शेष अन्य ईंधन जैसे सीएनजी, एलपीजी इत्यादि पूरी करते हैं जिसकी मांग लगातार बढ़ रही है। घरेलू कच्चे तेल का उत्पादन केवल 17.9% मांग को पूरा करने में सक्षम है, जबकि शेष आयातित कच्चे तेल से पूरा होता है। जब तक स्वदेशी तौर पर उत्पादित नवीकरणीय फीडस्टॉक के आधार पर पेट्रो आधारित ईंधन का विकल्प/पूरक वैकल्पिक ईंधन का विकास नहीं होता तब तक भारत की ऊर्जा सुरक्षा कमजोर रहेगी।

3. जैव ईंधन नवीकरणीय बायोमास संसाधनों और अपशिष्ट पदार्थों जैसे प्लास्टिक, नगरपालिका ठोस अपशिष्ट (एमएसडब्लू), अपशिष्ट गैसों आदि से प्राप्त किया जाता है और इसलिए पारंपरिक ऊर्जा संसाधनों की आपूर्ति द्वारा पर्यावरण के अनुकूल संपोषणीय तरीके से, आयातित जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता कम करने और भारत की शहरी और विशाल ग्रामीण आबादी की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उच्च स्तर की राष्ट्रीय ऊर्जा सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है।

4. ऊर्जा सुरक्षा और पर्यावरण संबंधी मुददों के कारण वैश्विक स्तर पर जैव ईंधन को महत्वपूर्ण माना गया है। जैव ईंधन के उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए कई देशों ने अपनी घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु विभिन्न कार्यप्रणालियों, प्रोत्साहन और सब्सिडी के माध्यम को अपनाया है। ग्रामीण विकास और रोजगार सृजन के लिए एक प्रभावी उपकरण के रूप में, एक प्रथम उपाय के रूप में भारत में जैव ईंधन में स्वदेशी फीडस्टॉक के उत्पादन को बढ़ावा देना होगा।

5. पिछले दशक में, सरकार ने एथेनॉल मिश्रित पेट्रोल कार्यक्रम, राष्ट्रीय बायो डीजल मिशन, बायोडीजल अपमिश्रण कार्यक्रम जैसे सुव्यवस्थित कार्यक्रमों के माध्यम से देश में जैव

ईंधन को बढ़ावा देने के लिए कई प्रयास किए हैं। पिछले अनुभवों और मांग आपूर्ति की स्थिति के आधार पर, सरकार ने मूल्य निर्धारण, प्रोत्साहन, इथेनॉल उत्पादन के लिए वैकल्पिक मार्ग खोलकर, थोक और खुदरा ग्राहकों को बायोडीजल की बिक्री, अनुसंधान एवं विकास आदि पर ध्यान केंद्रित करके इन कार्यक्रमों में सुधार किया है। इन उपायों से देश में जैव ईंधन कार्यक्रम में सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

विजन और लक्ष्य

1. इस नीति का उद्देश्य आने वाले दशक के दौरान देश के ऊर्जा और परिवहन क्षेत्रों में जैव ईंधन के उपयोग को बढ़ावा देना है। नीति का उद्देश्य घरेलू फीडस्टॉक को बढ़ावा देना और जैव ईंधन के उत्पादन के लिए इसकी उपयोगिता के साथ-साथ एक स्थायी तरीके से नए रोजगार के अवसर पैदा करने के अलावा राष्ट्रीय ऊर्जा सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन के अल्पीकरण में योगदान करते हुए जीवाश्म ईंधन का तेजी से विकल्प बनाना है।

2. पॉलिसी का लक्ष्य बाजार में जैव ईंधन की उपलब्धता को सुगम बनाना है जिससे उसके मिश्रण प्रतिशत में वृद्धि होगी। वर्तमान में पेट्रोल में इथेनॉल का सम्मिश्रण प्रतिशत लगभग 2.0% है और डीजल में बायोडीजल मिश्रण प्रतिशत 0.1% से कम है। 2030 तक पेट्रोल में इथेनॉल के 20% मिश्रण और डीजल में बायोडीजेल का 5% मिश्रण का प्रस्ताव है। यह लक्ष्य निम्नलिखित के माध्यम से हासिल किए जाएंगे-

•घरेलू उत्पादन में वृद्धि के द्वारा की जा रही इथेनॉल / बायोडीजल आपूर्ति को बढ़ाना

•द्वितीय पीढ़ी (2 जी) बायो रिफाइनरीज की स्थापना

•जैव ईंधन के लिए नए फीडस्टॉक का विकास

•जैव ईंधन में परिवर्तित करने वाली नई प्रौद्योगिकियों का विकासई) जैव ईंधन के लिए उपयुक्त वातावरण बनाना और मुख्य ईंधन इसे एकीकृत करना

जैव ईंधन क्या है -

•जैव ईंधन' नवीकरणीय संसाधनों से उत्पादित ईंधन हैं और परिवहन, स्टेशनरी, पोर्टेबल और अन्य अनुप्रयोगों के लिए डीजल, पेट्रोल या अन्य जीवाश्म ईंधन के स्थान पर अथवा उसके साथ मिश्रण में इसका प्रयोग किया जाता है;

•'बायोएथेनॉल'- बायोमास से उत्पन्न इथेनॉल जैसे कि चीनी युक्त सामग्री, जैसे गन्ना, चुकंदर, मीठे चारा आदि; स्टार्च युक्त मकई, कसावा, पके आलू, शैवाल आदि; और, सेल्यूलोजिक सामग्रियों जैसे कि बगैस, लकड़ी का कचरा, कृषि और वन अवशेष या औद्योगिक अपशिष्ट जैसे अन्य नवीकरणीय संसाधन;

•'बायोडीजल'- गैर-खाद्य वनस्पति तेलों, एसिड तेल, खाना पकाने के तेल या पशु वसा और जैव-तेल से बने फैटी एसिड के मिथाइल या एथिल एस्टर;

•उन्नत जैव ईंधन'- (1) लिगोनोक्लुलोजिक फीडस्टॉक्स (जैसे कृषि और वनों के अवशेष, जैसे चावल और गेहूं के भूसे / मकई सीओएस और स्टेवर / बैगेस, वुडी बायोमास), गैर-खाद्य फसलों (यानी घास, शैवाल) से उत्पन्न ईंधन या औद्योगिक कचरे और अवशेष प्रवाह, (2) कम सीओ उत्सर्जन या उच्च जीएचजी में कमी और भूमि उपयोग के लिए खाद्य फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करते। द्वितीय पीढ़ी (2 जी) एथेनॉल, ड्रॉपइन ईंधन, शैवाल आधारित 3 जी जैव ईंधन, जैव-सीएनजी, जैव-मेथनॉल, जैव-मेथनॉल से उत्सृजित दि मिथाइल ईथर (डीएमई) जैव-हाइड्रोजन, एमएसडब्ल्यू के साथ ईंधन में गिरावट जैसे ईंधन स्रोत/ फीडस्टॉक सामग्री "उन्नत जैव ईंधन" के रूप में मान्य होंगे।

•'ड्रॉप-इन ईंधन'- बायोमास, कृषि अपशिष्टों, निगम ठोस अपशिष्ट (एमएसडब्लू), प्लास्टिक अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट आदि से उत्पादित तरल ईंधन, जो कि एमएस, एचएसडी और जेट ईंधन के लिए भारतीय मानकों पर खरा उतरता है और जो यथावत या मिश्रित रूप में बाद में, इंजन सिस्टम में किसी भी संशोधन के बिना वाहनों में उपयोग किया जाता है और वर्तमान पेट्रोलियम वितरण प्रणाली का उपयोग कर सकता हैं। '

एथेनॉल मिश्रित पेट्रोल

वर्तमान में, ईबीपी कार्यक्रम के लिए एथेनॉल चीनी उद्योग के उप-उत्पाद के रूप में शीरा उत्पाद से आ रहा है। गन्ना और चीनी उत्पादन के वर्तमान स्तर (क्रमशः 350 एमएमटी और 26-28 एमएमटी प्रति वर्ष) में उपलब्ध अधिकतम शीरा लगभग 13 एमएमटी है, जो लगभग 300 करोड़ लीटर अल्कोहल / एथेनॉल का उत्पादन करने के लिए पर्याप्त है। वर्तमान में, शराब / एथेनॉल का उत्पादन करने के लिए सी-भारी शीरा का इस्तेमाल किया जा रहा है।

•चीनी की उपलब्धता के अनुसार एथेनॉल उत्पादन के लिए बी-भारी शीरा रूट को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। एक एमएमटी शुगर के उत्सर्ग पर 60 करोड़ लीटर इथनॉल का उत्पादन किया जा सकता है। इस विकल्प का उपयोग करने से एथेनॉल उत्पादन में सहयोगी डिस्टिलरीज़ में सुधार हो सकेगा। मिश्रण प्रतिशत को बढ़ाने के लिए सीधे गन्ने के रस से एथेनॉल उत्पादित किए जाने की अनुमति होगी।

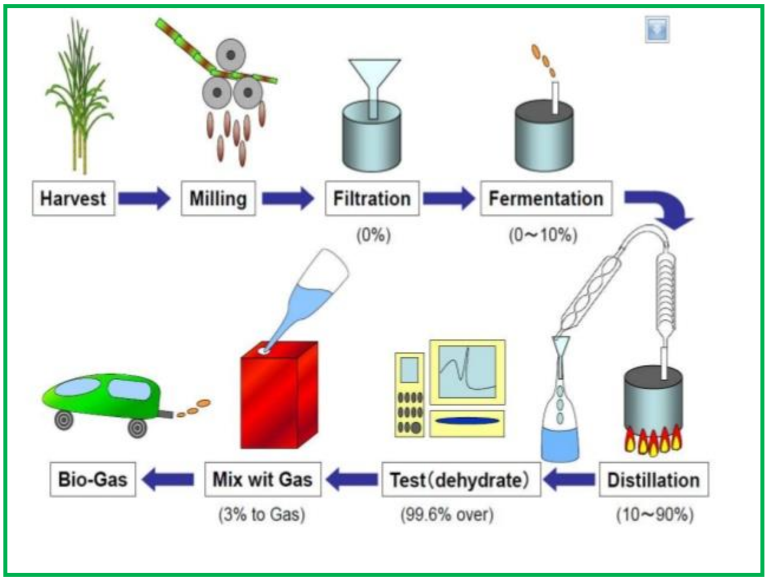

•एथेनॉल के उत्पादन के लिए अन्य वैकल्पिक कच्ची सामग्रियां जैसे कि शुगर युक्त सामग्री- चुकन्दर, ज्वार, आदि तथा स्टार्च युक्त जैसे - मकई, कसावा, सड़ा हुआ आलू आदि जैसे सामग्रियों का पहली पीढ़ी की पूर्णरूपेण विकसित प्रौद्योगिकियों का उपयोग करके किया जाएगा। राष्ट्रीय जैव-ईंधन समन्वय समिति के निर्णय के अनुसार खाद्यान की अधिशेष उपलब्धता होने पर खाद्यानों जैसे मक्का आदि से एथेनॉल उत्पादित किए जाने की अनुमति होगी।

दूसरी पीढ़ी (2 जी) एथेनॉल

•शीरे के माध्यम से एथेनॉल उत्पादन की अपनी सीमाएं हैं और मद्यपान और केमिकल उद्योगों में इसका प्रतिस्पर्धात्मक उपयोग होने से ईबीपी कार्यक्रम के लिए यह उपलब्ध हो

पाएगा, इसकी संभावना में संदेह है। यह पारंपरिक शीरा रूट और गन्ना रस रूट से अलग एथेनॉल के अन्य स्रोतों की तलाश करता है।

•भारत में किए गए कुछ अध्ययनों में प्रति वर्ष 120 -160 एमएमटी की अतिरिक्त बायोमास उपलब्धता का संकेत दिया गया है, जिसे परिवर्तित करने पर प्रति वर्ष 3000 करोड़ लीटर एथेनॉल प्राप्त किया जा सकता है। अतिरिक्त बायोमास / कृषि अपशिष्ट जो सेल्यूलोसिक और लिग्नोकेल्लोसिक किस्म की सामग्री है, इसको दूसरी पीढ़ी (2 जी) की प्रौद्योगिकियों का उपयोग करके एथेनॉल में परिवर्तित किया जा सकता है।

•प्रोत्साहन- वैश्विक रूप से, 2 जी इथेनॉल उद्योग प्रोत्साहनों के माध्यम से संचालित किया जाता है क्योंकि अभी इस प्रौद्योगिकी को व्यावसायिक पैमाने पर सिद्ध होना बाकी है और इस प्रकार उत्पादित एथनॉल अधिक पर्यावरण सापेक्ष है। यह 2 जी एथनॉल बायो रिफाइनरीज के बुनियादी ढांचागत विकास को संचालित करने में एक प्रमुख साधन होगा।

अन्य जैव ईंधन (ड्रॉप-इन-ईंधन, जैव-सीएनजी, जैव-हाइड्रोजन,जैव-मेथनॉल, डीएमई,आदि)

•विश्वभर में, कचरे को ड्राप-इन-ईंधन, जैव-सीएनजी, जैव-हाइड्रोजन आदि जैसे जैव ईंधनों में परिवर्तित करने के लिए उपलब्ध प्रौद्योगिकियां नवप्रवर्तनशील चरण में हैं और इन्हें व्यावसायिक स्तर पर साबित होने की जरूरत है। ऐसे कचरे का जैव-सीएनजी में रूपांतरण एक मॉडल है जिसे ग्रामीण इलाकों में ऊर्जा की मांग को पूरा करने और पर्यावरण संबंधी मसलों को करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। इस नीति के अनुरूप प्रति यूनिट संसाधित अपशिष्ट से बायो-सीएनजी का अधिक उत्पादन करने वाली प्रोद्योगिकियां प्रोत्साहित की जाएंगी। विभिन्न प्रोत्साहनों और ऑफटेक आश्वासन के माध्यम से उन्नत ईंधनों के उत्पादन के लिए ऐसे संयंत्र लगाने में भी वृद्धि की जाएगी। इसी तरह, रिफाइनरियों सहित कई उद्योगों में हाइड्रोजन का उपयोग सबसे महंगे ईंधन के रूप में पता लगाया गया है। बायोमास और अपशिष्ट से उत्पादित वायोहाइड्रोजन, अन्वेषण करने के लिए उपयोगी प्रस्ताव होगा।

•विश्वभर में, परिवहन ईंधन के रूप में मोटर स्प्रिट के साथ सम्मिश्रण में मेथनॉल के उपयोग का पता लगाया गया है। इसी प्रकार कृषि अपशिष्टों, प्राकृतिक गैस, उच्च राख कोयला आदि सहित विभिन्न स्रोतों से ही इसका उत्पादन किया जा सकता है। इस समय भारत मेथनॉल का विशेष आयातक है। अतिरिक्त बायोमास उपलब्धता में जैव-मेथनॉल और बायोबॉटियनॉल के उत्पादन की संभावना है और भारतीय परिवहन व्यवस्था में उसके अनुप्रयोग का पता लगाया जाएगा।

•डाय-मिथाइल ईथर (डीएमई) मेथनॉल के 2 अणुओं से पानी के 1 अणु को निकालकर प्राप्त किया जाता है, जो एक रासायनिक प्रक्रिया है, जो आमतौर पर उत्प्रेरक की सहायता से प्राप्त होती है। आरएंडडी संस्थानों द्वारा प्रोपेन के विकल्प के रूप में घरेलू एलपीजी में (डीएमई) का उपयोग किया जा रहा है। डीएमई धीमे आरपीएम डीजल इंजनों में डीजल के लिए एक विकल्प भी हो सकता है और इसलिए व्यापक उपयोग, औद्योगिक अनुप्रयोग और संभावित ईंधन के रूप में डीएमई की स्वीकृति मेथनॉल के औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए उचित है।

अभी हाल ही में 27 अगस्त 2018 को पहली बार बायोफ्यूल से विमान उड़ाकर भारत ने एविएशन इंडस्ट्री में नया मुकाम हासिल कर लिया है। स्पाइजेट ने बॉम्बार्डियर क्यू400 से देहरादून-दिल्ली के बीच इस उड़ान का सफल परीक्षण किया। इसके साथ ही भारत उन खास देशों की श्रेणी में शामिल हो गया, जिन्होंने बायोफ्यूल से किसी प्लेन को उड़ाया है। कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका जैसे विकसित देश ऐसा कर चुके हैं, लेकिन विकासशील देशों में यह उपलब्धि हासिल करने वाला भारत पहला देश बन गया है। बता दें कि इस साल की शुरुआत में ही दुनिया की पहली बायोफ्यूल फ्लाइट ने लॉस एंजेलिस से मेलबर्न के लिए उड़ान भरी थी।

स्पाइसजेट के अनुसार इस उड़ान के लिए इस्तेमाल ईंधन 75 प्रतिशत एविएशन टर्बाइन फ्यूल (एटीएफ) और 25 प्रतिशत बायोफ्यूल का मिश्रण था। एयरलाइन में बयान में कहा कि एटीएफ की तुलना में बायोफ्यूल इस्तेमाल का फायदा यह है कि इससे कॉर्बन उत्सर्जन घटता है और साथ ही ईंधन दक्षता भी बढ़ती है। जैव जेट ईंधन की लागत कम बैठती है और साथ ही यह उल्लेखनीय रूप से कॉर्बन उत्सर्जन घटाने में मदद करता है, तथा इसमें हमारी परंपरागत विमान ईंधन पर प्रत्येक उड़ान में निर्भरता में करीब 50 प्रतिशत की कमी लाई जा सकती है। जैव जेट ईंधन को अमेरिकी मानक परीक्षण प्रणाली (एएसटीएम) से मान्यता है।

जलवायु परिवर्तन - समझौते एवं सम्मेलन

श्री आर.सी.सक्सेना, क्षेत्रीय निदेशक, कोलकाता
श्री अवनीन्द्र कुमार, एस.एस.ए, क्षेत्रीय निदेशालय, कोलकाता
श्री अजय दुबे जे.एस.ए, क्षेत्रीय निदेशालय, कोलकाता

जलवायु परिवर्तन वस्तुतः इस पृथ्वी पर मानव ही नहीं वरन समस्त जीवधारियों के लिये बहुत बड़ा खतरा है। धरती की धारक क्षमता में ह्रास के लिये यह उत्तरदायी है। प्राकृतिक सम्पदा विरल होती जा रही है। यहाँ तक कि पेयजल की आपूर्ति में भी कमी आ रही है। वस्तुतः जलवायु परिवर्तन का प्रभाव वातावरण के साथ-साथ अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा है। गर्मी एवं वायु प्रदूषण का प्रभाव हमारे जनजीवन पर पड़ा है।

जलवायु परिवर्तन से इस धरती को बचाने की पहल बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ हुई जब विश्व के अनेक जागरुक राष्ट्र एकजुट होकर इस दिशा में प्रयास करने को सहमत हुए। वर्ष 1972 में स्वीडन के शहर स्टाकहोम में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विश्व का पहला अन्तरराष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें 119 देशों ने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू.एन.ई.पी.) का प्रारम्भ 'एक धरती' के सिद्धान्त को लेकर किया और एक 'पर्यावरण संरक्षण का मताधिकार पत्र' विकसित किया जो 'स्टाकहोम घोषणा' के नाम से जाना जाता है। इस समय सम्पूर्ण विश्व में 5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' के रूप में मनाने की भी स्वीकृति हुई।

इसके पश्चात 5 दिसम्बर, 1980 को 'संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा' ने 'पर्यावरण क्रियान्वयन परिषद' का विशेष सम्मेलन केन्या की राजधानी नैरोबी में मई (10-18) 1982 में आयोजित किये जाने का निर्णय लिया। तदुपरान्त जून (3-14) 1992 में ब्राजील के शहर रियो डि जेनेरो में 'पृथ्वी सम्मेलन' का आयोजन हुआ जो एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ। इस पृथ्वी सम्मेलन में 172 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने पृथ्वी के तापमान में वृद्धि एवं जैव-विविधता के संरक्षण आदि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार किया, जिसके फलस्वरूप 'जलवायु परिवर्तन सहमति' सम्भव हो पाई।

एजेंडा- 21, जैवमंडल के संरक्षण था आर्थिक समानता लाने के लिये सारे संसार के लिये विकास कार्य योजनाओं को प्रदर्शित करता है। जलवायु परिवर्तन सहमति में पृथ्वी का ताप बढ़ाने वाले गैसों के बढ़ते उत्सर्जन से जलवायु परितर्वन एवं समुद्रों के जलस्तर में वृद्धि के खतरों की ओर भी ध्यानाकर्षण किया गया तथा यह आग्रह किया गया कि विकसित देश इन गैसों के उत्सर्जन को वर्ष 2000 तक वर्ष 1990 के स्तर पर लाने का प्रयास करेंगे।

वर्ष 1997 में 5 जून को 'द्वितीय पृथ्वी सम्मेलन' का आयोजन डेनेवर में हुआ, जिसमें वर्ष 1992 में प्रथम 'पृथ्वी सम्मेलन' के दौरान लिये गए निर्णयों की समीक्षा की गई और यह पाया गया कि वांछित प्रगति नहीं हो पाई थी। इस सम्मेलन में विभिन्न राष्ट्रों में मतैक्य नहीं हो पाया। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने के प्रस्ताव पर अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि देशों ने अपनी सहमति नहीं दी। प्रख्यात 'क्योटो सम्मेलन' का आयोजन जापान के क्योटो शहर में दिसम्बर, 1997 'भूमंडलीय तापन' के सम्बन्ध में हुआ। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य वातावरण में हानिकारक गैसों की सान्द्रता की सीमा को नियंत्रित कर जलवायु परिवर्तन के खतरों को टालना था। 178 देशों ने जून, 2008 तक इस लक्ष्य के प्रथम चरण का आकलन 2010 में किया जाना सुनिश्चित किया। परन्तु मात्र 60 प्रतिशत विकसित देशों ने ही इस संधि के प्रति अपनी सहमति दी।

वर्ष 2007 में इंडोनेशिया के बाली द्वीप में जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक तापन के सम्बन्ध में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें 180 से अधिक देशों ने ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने तथा क्योटो प्रोटोकॉल की समय रेखा समाप्ति के पहले एक नई सहमति (जिससे इन गैसों के उत्सर्जन पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाकर, पृथ्वी को विनाश से बचाया जा सके) तथा अन्य अनेक विषयों पर चर्चा की।

जुलाई, 2009 में इटली में आयोजित औद्योगिक देशों के समूह 'जी-8' के शिखर सम्मेलन में जी-8 एवं विकासशील देशों के समूह जी-5 जलवायु परिवर्तन पर सर्वसम्मति से दस्तावेज जारी करने पर सहमत हो गए परन्तु ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को 2050 तक घटाकर आधा करने के लक्ष्यों को तय नहीं किया जा सका।

जलवायु परिवर्तन के नियंत्रण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन 7-18 दिसम्बर, 2009 में कोपेनहेगन में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य बाली कार्य योजना का क्रियान्वयन तथा क्योटो प्रोटोकॉल की दूसरी प्रतिबद्धता अवधि के सम्बन्ध में निर्णय लेना था। यद्यपि सम्मेलन में बाली कार्य योजना तथा क्योटो प्रोटोकॉल की दूसरी प्रतिबद्धता के सम्बन्ध में कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय नहीं हो सका, तथापि इन विषयों पर चर्चा

जारी रखने तथा कानकुन, मैक्सिको में दिसम्बर 2010 में आयोजित होने वाले सम्मेलन में ठोस निर्णय लेने की सम्भावना व्यक्त की गई।

जलवायु परिवर्तन से सम्बन्धित क्योटो समझौता के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में कांफ्रेंस ऑफ पार्टीज की 15वीं बैठक डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में 7 से 18 दिसम्बर तक आयोजित की गई। कोपेनहेगन घोषणापत्र पहली बार चीन, भारत और दूसरे विकासशील देशों को अमेरिका के साथ एकजुट करने में सफल रहा यह इस समझौते की सबसे बड़ी सफलता है। कोपेनहेगन समझौते के अनुसार विकसित देश वर्ष 2020 तक प्रतिवर्ष 100 अरब डॉलर एकत्रित करने का प्रयास करेंगे जिससे विकासशील देशों को ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती में मदद की जाएगी। कोपेनहेगन समझौते के मुख्य बिन्दु इस प्रकार से हैं:

1. जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने और पूर्व-औद्योगिक काल की तुलना में वर्ष 2050 तक तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस से कम वृद्धि के लिये एक उद्देश्य पर अपनी क्षमता के अनुसार देशों की अलग-अलग जिम्मेदारी तय की गई।

2. ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती करना, जिससे विश्व के औसत तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस से अधिक की वृद्धि न हो।

3. विकसित देश ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कितनी कटौती करेंगे और विकासशील देशों की इस दिशा में क्या पहल या योजना है- संयुक्त राष्ट्र को 31 जनवरी, 2010 के पहले सूचित करना।

4. संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में ‘कोपेनहेगन ग्रीन क्लाइमेट फंड’ बनाया जाएगा जो विकासशील देशों को जलवायु परिवर्तन से सम्बन्धित परियोजना में मदद करेगा।

5. अन्तरराष्ट्रीय सहयोग से चलने वाले विकासशील देशों में ग्रीनहाउस गैसों की कटौती से सम्बन्धित परियोजनाओं की निगरानी अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर की जाएगी।

6. विकासशील देशों में वनों के संरक्षण व वर्गीकरण की योजनाओं को आर्थिक मदद के लिये कोष को त्वरित प्रभाव से स्थापित करने की योजना।

इस समझौते की पहल अमेरिका के नेतृत्व में चीन, भारत, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील, फ्रांस, जर्मनी और यूनाइटेड किंगडम द्वारा की गई जबकि वेनेजुएला, बोलिविया, इक्वाडोर और क्यूबा जैसे देश इसके विरोध में थे।

कानकुन सम्मेलन दो खास एजेंडे थे- हरित टेक्नोलॉजी मुहैया कराना और हरित कोष (ग्रीन फंड) का ढाँचा तैयार करना।जहाँ तक हरित टेक्नोलॉजी का सवाल है, वह सीधे तौर पर बौद्धिक सम्पदा अधिकार व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। विकासशील देशों की माँग रही है कि धनी देश ऐसी टेक्नोलॉजी को पेटेंट से मुक्त करें, ताकि गरीब देश इन्हें अपनाकर अपने यहाँ ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन घटा सकें। लेकिन कानकुन घोषणापत्र में इस मुद्दे का कोई जिक्र नहीं हुआ।

इस नाकामी का नतीजा यह है कि इस सदी के अन्त तक धरती के तापमान को पूर्व औद्योगिक काल के स्तर से दो डिग्री से ज्यादा न बढ़ने देने का संकल्प खोखला नजर आता है। इसके परिणामों का आज बेहतर अनुमान है, लेकिन मुनाफे और उपभोग का स्वार्थ ऐसा है कि कल के लिये हल्की-सी भी कुर्बानी देने को धनी देश तैयार नहीं हैं फिर भी कानकुन समझौता के प्रमुख बिन्दु निम्न है

1. सभी देश करेंगे उत्सर्जन में कटौती।
2. निर्वनीकरण रोकने के उपाय अपनाने वाले देशों को वित्तीय सहायता प्रदान करने पर रजामंदी।
3. विकासशील देशों को जलवायु परिवर्तन रोकने के लिये 30 बिलियन डॉलर की वित्तीय सहायता निकट भविष्य में तथा कालान्तर में 100 बिलियन डॉलर के वित्त पोषण का प्रावधान।
4. पर्यावरण रखरखाव के लिये मुख्यतः विकासशील देशों को नियंत्रण वाले संयुक्त राष्ट्र कोष की स्थापना।
5. कम कार्बन उत्सर्जन वाली तकनीक एवं प्रौद्योगिकी विकासशील एवं अविकसित देशों को उपलब्ध कराए जाने पर सहमति।
6. चीन एवं अमेरिका समेत सभी बड़े राष्ट्र अपने पर्यावरण रखरखाव सम्बन्धी प्रयासों के अन्तरराष्ट्रीय मूल्यांकन पर सहमत।
7. जैव ईंधन में निर्धारित कमी का लक्ष्य तय करके अक्षय ऊर्जा एवं ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों द्वारा प्रतिस्थापन करना होगा।
8. पाँच वर्ष के बाद समूची प्रक्रिया के वैज्ञानिक विश्लेषण का निर्णय।

पेरिस समझौता, जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (UNFCCC) के तहत किया गया है जो ग्रीनहाउस गैसों के शमन, अनुकूलन और इसके लिये 2020 से वित्तीय सहायता शुरू करने को लेकर है। यह समझौता ध्रुवीय बर्फ के पिघलने, समुद्र जल स्तर में वृद्धि और कृषि योग्य भूमि के रेगिस्तान में तब्दील होने की समस्या के हल के लिए अंतराष्ट्रीय समुदाय की एक नई प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है।

इस समझौते पर 192 पक्षों ने पेरिस में पिछले वर्ष दिसंबर में हस्ताक्षर किये थे। यह समझौता ग्लोबल वार्मिंग को दो डिग्री सेल्सियस सीमित करने की मांग करता है। यह समझौता जीवाश्म ईंधनों जैसे कोयला और तेल के उपयोग में कमी करने को लेकर प्रतिबद्धता का है। वर्तमान में इसके लिये 97 देश सहमत हो गए हैं जो कुल वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन के 67.5% के लिये जिम्मेदार हैं.

क्योटो प्रोटोकॉल को लागू होने में सात साल से भी अधिक का समय लगा था, जबकि पेरिस जलवायु समझौता एक साल से भी कम समय में लागू हो गया।

भारतीय सन्दर्भ में जलवायु परिवर्तन की समस्या का समाधान

विश्व के कई विकसित तथा विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन से उपजी समस्याओं का समाधान ढूँढा जा रहा है। लेकिन भारत केवल जलवायु ही नहीं, बल्कि कई अन्य कारणों से अपनी अलग विशेषता रखता है। भारत कृषि प्रधान देश है। जलवायु परिवर्तन का भयावह असर हमारे देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा है। वर्षा की पर्याप्त मात्रा न होने से इसका सीधा प्रभाव वायु तापमान पर पड़ता है। हमारे देश में प्राकृतिक संसाधनों विशेषकर वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं की विशाल धरोहर है तथा भारत का जैव-विविधता के क्षेत्र में पूरे विश्व में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस विविधता के संरक्षण हेतु हमें राष्ट्रीय स्तर पर जलवायु में हो रहे परिवर्तन की रोकथाम हेतु अधिक-से-अधिक प्रयास करने होंगे। अक्षय ऊर्जा के अधिकतम प्रयोग के साथ ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों द्वारा प्रतिस्थापन करने लक्ष्य निर्धारित करके इनको तय समय में पूर्ण करना होगा।

मरुस्थलीकरण एक वैश्विक समस्या

डॉ.पी.के.बेहेरा, क्षेत्रीय निदेशक, भोपाल

मरुस्थलीकरण (रेगिस्तान का फैलना) आज विश्व भर में एक विकट समस्या बन गया है। उससे बड़ी संख्या में मनुष्य प्रभावित हो रहे हैं क्योंकि रेत का साम्राज्य बढ़ने से अन्न का उत्पादन घटता है और अनेक प्राकृतिक तंत्रों की धारण क्षमता कम होती है। पर्यावरण भी उसके कुप्रभावों से अछूता नहीं रह पा रहा है।

मरुस्थलीकरण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिससे विश्व भर के शुष्क क्षेत्रों में उपजाऊ जमीन अनुपजाऊ जमीन में बदल रही है। मानव गतिविधियां और भौगोलिक परिवर्तन, दोनों इसके लिए जिम्मेदार हैं। शुष्क क्षेत्र उन इलाकों को कहते हैं जहां उतनी बारिश नहीं होती कि घनी हरियाली पनप सके। विश्व के कुल स्थल भाग का लगभग 40 प्रतिशत, अथवा 5.4 करोड़ वर्ग किलोमीटर, शुष्क है। मरुस्थलीकरण इन्हीं शुष्क भागों में अधिक देखने में आता है।

भारत का 69.6 प्रतिशत भूभाग (22.83 करोड़ हेक्टेयर) शुष्क माना गया है। यद्यपि इन शुष्क इलाकों की उत्पादकता काफी कम है, फिर भी दूध, मांस, रेशे, चमड़ा आदि के उत्पादन में वे काफी योगदान देते हैं। देश की आबादी का एक बहुत बड़ा भाग शुष्क इलाकों में रहता है।

मनुष्य तथा उसके पालतू पशु सदा से ही रेगिस्तानी इलाकों में रहते आ रहे हैं। विश्व के अन्य शुष्क इलाकों की तुलना में भारत के शुष्क इलाकों में मानव आबादी का दबाव कहीं ज्यादा है। भारत के पास विश्व के कुल स्थल भाग का मात्र 2.4 प्रतिशत है, लेकिन कुल मानव आबादी का 16.67 प्रतिशत भारत में रहता है। इतना ही नहीं, भारत में विश्व में मौजूद चरागाहों का मात्र 0.5 प्रतिशत ही है, पर यहां विश्व में मौजूद मवेशियों का 18 प्रतिशत पलता है। मनुष्य और मवेशियों का यह असहनीय दबाव मरुस्थलीकरण को बढ़ावा दे रहा है। थार रेगिस्तान के भीतरी भागों तक में खेती और पशुपालन का प्रसार हो रहा है।

रेगिस्तानी इलाकों में पानी की सीमित उपलब्धि वानस्पतिक उत्पादकता की सीमा बांध देती है। वहां वर्षा भी बड़े ही अनियमित ढंग से होती है, जिससे अन्न के उत्पादन में

बड़ी-बड़ी अनियमितताएं देखी जाती हैं। किसी भी प्राकृतिक-तंत्र की धारण क्षमता सीमित होती है। इस सीमा का उल्लंघन होने पर वह तंत्र बिखरने लगता है। शुष्क इलाकों का प्राकृतिक तंत्र भी मनुष्य द्वारा डाले गए दबाव से आखिरकार चरमरा जाता है। यदि समय रहते इस विघटनकारी प्रक्रिया को रोका नहीं गया, तो सारा तंत्र रेगिस्तान की भेंट चढ़ जाता है, अथवा अत्यधिक चराई और लकड़ी के लिए पेड़ों की छंटाई के कारण उस तंत्र में उपयोगी पौधों की तादाद घट जाती है। उनका स्थान अनुपयोगी और अखाद्य पौधे ले लेते हैं। नतीजा यह होता है कि वह तंत्र अब पहले से भी कम संख्या में मनुष्यों और मवेशियों को पोषित कर पाता है। यही दुश्चक्र मरुस्थलीकरण को गति देता है।

अभी हाल तक हर गांव में नदी-तालाब होते थे, जिनका पानी फसल उगाने के लिए पर्याप्त था। गांव के गोचरों में मवेशियों के लिए चारा पैदा होता था,आसपास के जंगलों से चूल्हे के लिए लकड़ी मिल जाती थी। आज इन्हीं गांवों का हाल बिलकुल बदल गया है। नदी-तालाब सूख गए हैं, अथवा उनमें पानी बहुत कम रह गया है। जो जलाशय बचे हैं, उनमें से कई तो इतने प्रदूषित हो गए हैं कि उनका पानी पीने लायक नहीं रह गया है। गांव की स्त्रियों को पानी, चारा और ईंधन लाने के लिए मजबूरन कोसों चलना पड़ रहा है। यह दुखद स्थिति गांवों तक सीमित नहीं है, अनेक शहरों की भी यही दशा है।

मिट्टी के कटाव का एक अन्य दुष्परिणाम यह है कि पानी के साथ बह आई मिट्टी जलाशयों में जमा होकर उनके जलधारण क्षमता को घटा रही है। इससे बाढ़ की स्थिति और गंभीर हो जाती है और लाखों लोगों को हर साल बारिश के मौसम में बेघर होना पड़ता है। हमारे देश में ऐसे व्यक्तियों की तादाद बहुत ज्यादा है जिनके लिए बारिश का मौसम अभिशाप बनकर आता है, क्योंकि वह मौत, बीमारी और तबाही का पैगाम भी साथ लाता है। बड़ी-बड़ी पनबिजली योजनाओं के सरोवरों में मिट्टी भर जाने से उनसे निर्मित बिजली की मात्रा घटी है और इन योजनाओं की आयु कम हो गई है।

सन 1992 में ब्राजील के रियो द जनेरियो में हुए पृथ्वी सम्मेलन में विश्व समुदाय ने मरुस्थलीकरण रोकने के लिए एक महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय संधि पर हस्ताक्षर किए। 15 जून 1994 को इस संधि को कानूनी स्वरूप दिया गया। भारत ने उसे 17 दिसंबर 1996 को

अनुमोदित किया। इस संधि का उद्देश्य है मरुस्थलीकरण रोकना तथा मरुस्थलीकरण और सूखे के कारण मानव समुदायों पर पड़ रहे विपरीत प्रभावों को कम करने के लिए सभी देशों के बीच सभी स्तरों पर सहयोग बढ़ाना।

थार रेगिस्तान में वर्ष के कुछ ही महीने फसल उगाने के लिए उपयुक्त होते हैं। अतः वहां के लोगों ने अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए खेती के साथ पशुपालन भी करना सीख लिया है। गर्मियों में वे बाजरा आदि खुरदुरे अनाजों की खेती करते हैं, जिन्हें बहुत कम पानी चाहिए होता है। लेकिन पालीवाल नामक एक काश्तकार समुदाय वर्षाजल संचित करके सर्दियों की फसल भी उगाने में सफल हुआ है। इस विधि को खदीन प्रणाली कहते हैं। आज 500 से भी ज्यादा छोटे-बड़े खदीन हैं जो 12,140 हेक्टेयर क्षेत्र को सिंचित कर रहे हैं। बिहार में इससे मिलता-जुलता एक दूसरा तरीका है जिसे अहर कहा जाता है।

अर्ध-शुष्क इलाकों में खेती की नींव खेत-तालाब होते हैं। ये वर्षाजल को संचित करते हैं और इन्हें या तो जमीन खोदकर बनाया जाता है अथवा पानी के बहाव के मार्ग में दीवार बनाकर। तमिलनाड में नमभूमि पर कम पानी मांगनेवाली फसलों की खेती का प्रचलन है। यदि फसल बोने के समय वर्षा होने के आसार नजर न आए, तो किसान तालाब की सिंचाई पर पनपने वाले बाजरा, रागी आदि फसल बोते हैं, जो कम पानी मिलने पर भी अच्छी पैदावार देते हैं। यदि वर्षा होने के आसार अच्छे हों, तो किसान धान की खेती करते हैं।

मध्य भारत में वर्षाजल संचित करने का एक बहुत प्राचीन तरीका प्रचलित है, जिसे हवेली प्रणाली कहते हैं। भीलों ने एक अन्य विधि विकसित की है जिसे पट्टा कहा जाता है। इसके अंतर्गत नदी-नालों की धारा को रोककर 30-60 सेंटीमीटर गहरा सरोवर बनाया जाता है। यह गहराई खेतों को पानी ले जानेवाली नहरों में पानी पहुंचाने के लिए पर्याप्त होती है। इस विधि की सहायता से साल में दो फसल उगाना संभव हो जाता है।

शुष्क इलाकों की प्रकृति खेती से भी ज्यादा पशुपालन के अनुकूल होती है क्योंकि जहां खेती नहीं हो सकती वहां अच्छे चरागाह हो सकते हैं। इसीलिए शुष्क प्रदेशों के अधिकांश किसान मिश्रित खेती करते हैं, जिसमें पशुपालन को भी महत्वपूर्ण स्थान है। इससे प्राकृतिक संसाधनों से अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।

थार रेगिस्तान के अधिक रेतीले भागों के गांवों में वर्षाजल एकत्र करने का एक स्थानीय विधि कुंड है। राजस्थान के गांवों के कुंड, कुंडी (छोटे आकार के कुंड) और टंका और गुजरात की बावड़ियां पेय जल भी उपलब्ध कराते हैं।

रेगिस्तान के निवासियों ने कृषिवानिकी भी बड़े पैमाने पर अपनाया है। इसके अंतर्गत उपयोगी पेड़ों की कतारों के बीच फल-तरकारी आदि उगाए जाते हैं। उदाहरण के लिए राजस्थान में खेतों में खेजड़ी वृक्ष (प्रोसोपिस सिनेरेरिआ) और चरागाहों में बेर (जिजिफस मौरिटिआना) के कुंज अक्सर उगाए जाते हैं। यहां के निवासियों का दृढ़ विश्वास है कि पेड़ों के नीचे फसल अच्छी पनपती है और उनसे ढोरों के लिए चारा भी मिलता है। शुष्क प्रदेशों में सड़कों, नहरों और सरोवरों के किनारे छायादार पेड़ लगाना एक धार्मिक परंपरा रही है।

हमारा देश बहुत बड़ा है और उसमें विविधता भी बहुत अधिक है। दूसरी ओर मरुस्थलीकरण जैसी समस्या बहुत ही जटिल है और बड़े पैमाने पर दुष्प्रभाव डालती है। उससे लड़ने के साधन सीमित हैं। इस वस्तुस्थिति को ध्यान में रखते हुए यही उचित है कि अधिक ध्यान उन क्षेत्रों की ओर दिया जाए जहां मरुस्थलीकरण का प्रभाव सर्वाधिक दृष्टिगोचर होता हो। मरुस्थलीकरण से निपटने के किसी भी कार्यक्रम में स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी अनिवार्य मानी जानी चाहिए। मरुस्थलीकरण एक विश्वव्यापी समस्या है और इसलिए सभी देशों को मिलकर उसका सामना करना चाहिए।

सुपरबग - एंटीबॉयोटिक का एक दुष्प्रभाव

श्री बी.आर.नायडू, क्षेत्रीय निदेशक, वडोदरा
श्री प्रसून गार्गव, वैज्ञानिक 'ई' क्षेत्रीय निदेशालय, वडोदरा

एंटीबायोटिक का इस्तेमाल बैक्टीरिया और वायरस जैसे सूक्ष्म जीवों से लड़ने के लिए किया जाता है,लेकिन इनके अत्याधिक इस्तेमाल से बैक्टीरिया में एक खास तरह की प्रतिरोधी क्षमता पैदा हो जाती है जिसके चलते बाद में इन दवाओं का उन पर असर होना बंद हो जाता है। बैक्टीरिया के प्रतिरोधी क्षमता प्राप्त कर लेने से हम वापस उस युग में जा सकते हैं जब हम दवाओं के मामले में इतने सफल नहीं थे। भारत में बदलती जीवनशैली के चलते व शीघ्र स्वस्थ होने के लिए अधिक क्षमता की दवा खा लेना लोगों के बीच बड़ी आम बात हो गई है।

समस्या की जड़

शोध के मुताबिक भारत के एक तबके में एंटीबायोटिक के बढ़ते इस्तेमाल की वजह है लोगों की बढ़ती आमदनी, वे आसानी से दवाएं खरीद सकते हैं दूसरी बड़ी वजह है इन दवाओं का पर्चे के बगैर दवाखानों से मिल जाना। डॉक्टर भी बड़ी आसानी से मरीजों को एंटीबायोटिक दवाएं लिख देते हैं एक और वजह है भारत में संक्रमण की ज्यादा संभावनाएं लेकिन उन्हें दवाओं से नहीं बल्कि साफ सफाई से रोकने की जरूरत है। "एंटीबायोटिक" शब्द का प्रयोग 1942 में सेलमैन वाक्समैन द्वारा किसी एक सूक्ष्म जीव द्वारा उत्पन्न किये गये ठोस या तरल पदार्थ के लिए किया गया, जो उच्च तनुकरण में अन्य सूक्ष्मजीवों के विकास के विरोधी होते हैं। इसमें प्राकृतिक रूप से प्राप्त होने वाले ठोस या तरल पदार्थ नहीं हैं जो जीवाणुओं को मारने में सक्षम होते हैं।पहली प्राकृतिक एंटीबायोटिक- पेनिसिलिन की खोज 1928 में अलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने की थी।

मूलतः एंटीबायोसिस कहे जाने वाले एंटीबायोटिक्स वैसी दवाएं हैं, जो बैक्टीरिया के खिलाफ काम करती हैं। एंटीबायोसिस शब्द का मतलब है "जीवन के खिलाफ" और इसकी शुरुआत फ्रांस के जीवाणु विज्ञानी विलेमिन द्वारा की गई।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार एंटीबायोटिक दवाओं के अंश पर्यावरण मे आने के निम्न मार्ग होते है :

1) दवा निर्माता उद्योग से निकलने वाले वेस्ट वॉटर मे इन उद्योग में उत्पादित होने वाले एंटीबायोटिक दवाओं के अंश होते है जिन्हे समान्य उपचार द्वारा दूर नही किया जा सकता तथा यह सरफेस वॉटर तथा भूमिगत जल मे समाहित हो जाते है।
2) मनुष्य या जानवरों द्वारा जो एंटीबायोटिक दवाओं का सेवन किया जाता है उसका कुछ हिस्सा बिना अवशोषण के निस्तारित हो जाता है जो अंततः जल या भूमि को ही प्रदूषित करते है।
3) दवाओं के गैर-वैज्ञानिक तरीके से निस्तारण।

यद्यपि भारत में अभी तक ओद्योगिक निस्तारित जल में एंटीबायोटिक दवाओं के कोई मानक निर्धारित नही किए गए है तथापि इस संदर्भ में केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा मानक बनाने का प्रयास किये जा रहा है।

एंटीबायोटिक दवाओं के दुष्प्रभाव

हालांकि आमतौर पर एंटीबायोटिक दवाओं को सुरक्षित और अच्छी तरह सहन करने योग्य माना जाता है, पर ये व्यापक रूप से प्रतिकूल प्रभाव से भी जुड़ी हुई हैं। दुष्प्रभाव कई तरह के विविध रूपों वाले और पूरी तरह एंटीबायोटिक के उपयोग और लक्ष्यित किये जाने वाले सूक्ष्मजीवों पर निर्भर होते हैं। नई दवाओं से उपचार के सुरक्षा प्रोफाइल कई वर्षों से उपयोग की जा रही दवाओं जितने अधिमान्य नहीं है। एंटीबायोटिक का प्रतिकूल प्रभाव बुखार और मिचली से लेकर फोटोडर्माटाइटिस और एनाफिलिक्स जैसे बड़े एलर्जी तक के रूप में दिख सकते हैं।

वर्तमान में प्रतिरोध का सामना करने के दवा यौगिकों के विकास के लिए एक समाधान पर अनुसंधान किया जा रहा है, जो कई एंटीबायोटिक प्रतिरोध को वापस कर सकता है। ये तथाकथित प्रतिरोध को संशोधित करने वाले एजेंट (MDR) तंत्र को निशाना बना सकते हैं और

उन्हें बाधित कर सकते हैं, जिससे बैक्टीरिया एंटीबायोटिक दवाओं से आक्रांत हो सकते हैं जो पहले से ही प्रतिरोधी के रूप में मौजूद थे।

एंटीबायोटिक दवाओं से परे : बहु-औषधि प्रतिरोधी बैक्टीरिया का इलाज

बहु-औषधि प्रतिरोधी बैक्टीरिया संक्रमणों के मुकाबले के लिए आम तौर पर टीके का सुझाव दिया जाता है। वे वास्तव में चिकित्सा के एक बड़े वर्ग के भीतर समा जाते हैं, जो प्रतिरक्षा मॉड्यूलेशन या वृद्धि पर निर्भर होते हैं। ये चिकित्सा प्रणालियां संक्रमित या संभावित मेजबान की प्राकृतिक प्रतिरोधक क्षमता को जगाती हैं या मजबूत बनाती हैं, जिससे मैक्रोफेज, एंटीबॉडी का निर्माण, सूजन, या अन्य क्लासिक प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया जैसी गतिविधियां दिखती हैं।

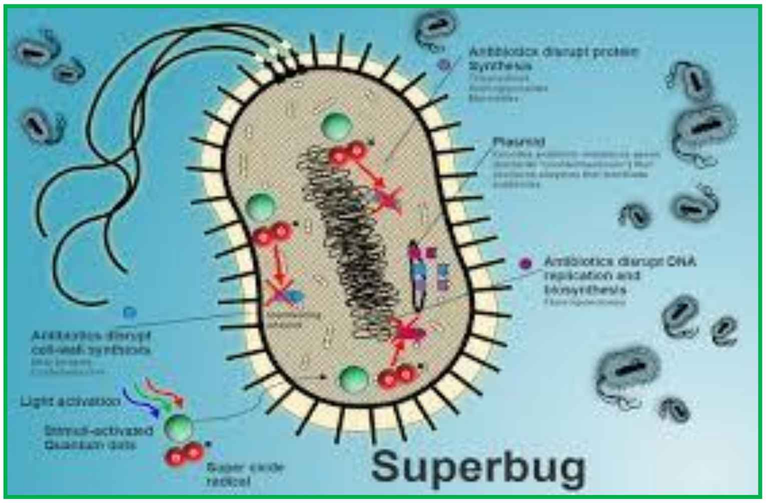

खतरनाक सुपरबग

सुपरबग मनुष्य के शरीर में पाए जाने वाले हानिकारक बैक्टीरिया दवाओं के खिलाफ प्रतिरोधी क्षमता यानी अपने भीतर ड्रग रेजिस्टैंस विकसित कर लेते हैं तो उन पर लगाम लगाना चिकित्सा जगत के लिए मुश्किल हो जाता है।

खतरा सिर्फ दवाओं के बेअसर होने का नहीं है, बल्कि सुपरबग के ताकतवर होते जाने का है क्योंकि ये नई से नई दवाओं के खिलाफ भी प्रतिरोधी क्षमता विकसित कर लेते हैं जिस से मामूली बीमारियों के भी महामारी में बदल जाने का संकट खड़ा हो जाता है। यहां अहम सवाल यह है कि क्या सुपरबग साफसफाई की कमी या विषैले प्रदूषण की पैदावार हैं या फिर उन्हें दुनिया में ऐंटीबायोटिक के बढ़ते इस्तेमाल ने पैदा किया है यह भी शोध का विषय है।

दुनिया की आबोहवा में इंसानों को बीमार करने वाले विषाणु हमेशा से मौजूद रहे हैं और आधुनिक चिकित्सा की 90 फीसदी जंग बैक्टीरिया से पैदा होने वाले संक्रमणों को खत्म करना रही है। यह सच है कि दूषित हवा पानी ऐसे विषाणुओं की पैदावार में सहायक होते हैं जो कई बार जानलेवा भी होते हैं।

भारत में ऐंटीबायोटिक दवाओं के खिलाफ प्रतिरोधी सुपरबग विकसित होने की अनेक घटनाएं सामने आ चुकी हैं। इस की ज्यादा चर्चा वर्ष 2010 में तब हुई थी जब एक अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य पत्रिका 'लांसेट' ने भारत के अस्पतालों में एक सुपरबग एनडीएम-1 की मौजूदगी का दावा किया था लेकिन इस सुपरबग के प्रकट होने के साथ ही देश में यह चर्चा जोर पकड़ गई थी कि आखिर ऐसे सुपरबग कहां से ताकत पा रहे हैं और क्या यह अकेला सुपरबग है?

जाँच से पता चला कि एनडीएम-1 अकेला सुपरबग नहीं है. 'मेथिसिलिन रेसिस्टैंट स्टेफाइलोकौक्कस औरियस' (एमआरएसए) नाम के बैक्टीरिया पर भी बहुत से ऐंटीबायोटिक्स का असर नहीं हो रहा है। एमआरएसए के कारण मूत्रमार्ग का घातक संक्रमण, निमोनिया और जख्मों में इन्फैक्शन हो सकता है। विशेषज्ञों का कहना है कि यदि सरकार ढंग से पड़ताल कराए तो कई और सुपरबग्स का पता चल सकता है, इंडियन काउंसिल औफ मैडिकल रिसर्च ने कुछ समय पहले ऐसे ही अज्ञात सुपरबग्स का पता लगाने के लिए एक प्रोजैक्ट की शुरुआत की थी। जहां तक सुपरबग्स के दिनोंदिन ताकतवर होते जाने का सवाल है, तो सारे विज्ञानी इस बारे में एकमत हैं कि ऐसा ऐंटीबायोटिक दवाओं के अंधाधुंध और लापरवाह इस्तेमाल की वजह से हो रहा है। एक तरफ तो खुद मरीज डाक्टरों से बीमारी जल्दी ठीक करने का आग्रह करते हुए ताकतवर ऐंटीबायोटिक लिख देने का दबाव बनाते हैं, वहीं दूसरी तरफ कई बार वे खुद ही दवाओं की ताकतवर डोज ले लेते हैं। शुरूशुरू में तो ये ऐंटीबायोटिक अपना असर दिखाते हैं लेकिन धीरेधीरे ये भी अपना प्रभाव खो देते हैं क्योंकि बारबार ज्यादा ताकतवर दवाएं लेते रहने पर बीमारियों के बैक्टीरिया इन के खिलाफ प्रतिरोधी क्षमता विकसित कर लेते हैं।

समस्या बिना पूरी जांच के या फिर अपनी डाक्टरी चमकाने के मकसद से ज्यादा ताकत वाली दवाएं खुद डाक्टरों द्वारा सुझाए जाने की भी है। ऐसे डाक्टरों के मरीज ठीक तो जल्दी हो जाते हैं लेकिन उन्हीं दवाओं के खिलाफ बहुत जल्दी सुपरबग भी विकसित हो जाते

हैं। इस समय ड्रग इंडस्ट्री के सामने सब से बड़ी चुनौती यही है कि कैसे वह सामने आ रहे सुपरबग्स के खिलाफ और ज्यादा ताकतवर ऐंटीबायोटिक दवाएं बनाए।

असल में, मामला कुल मिला कर ऐंटीबायोटिक दवाओं के दुरुपयोग का है। इस के खतरों के बारे में आगाह करते हुए 2 साल पहले विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कहा था कि बड़ी तादाद में प्रथम पंक्ति की ऐंटीबायोटिक दवाएं असर करना बंद कर रही हैं, यही नहीं, दूसरी और तीसरी पंक्ति की दवाएं न केवल बहुत ज्यादा महंगी होती हैं बल्कि उन के दुष्प्रभाव भी ज्यादा होते हैं। वे लोग जिन पर बहुत सारी दवाएं बेअसर हो चुकी हैं वे अपनी बीमारियों के जीवाणु फैलाते हैं, इस से उन के संपर्क में आने वाले लोग भी उन विषाणुओं से ग्रस्त हो जाते हैं और उन पर भी दवाओं का असर नहीं होता। इस के कारण भारत पर छूत की बीमारियों का बहुत बोझ पड़ गया है, स्थिति यह है कि भारत में हर साल 1 लाख मल्टी ड्रग रेसिस्टैंट टीबी के मरीज बढ़ रहे हैं। टीबी के इस प्रकार से निबटने में जो दवाएं इस्तेमाल होती हैं वे सामान्य दवाओं से 100 गुना ज्यादा महंगी हैं और उस पर भी वे बेअसर साबित हो रही हैं।

इन मामलों से साफ है कि सही इलाज सिर्फ दवाओं में नहीं, साफसफाई के प्रति सजग रहने और प्रदूषण से खुद को दूर रखने से ही मुमकिन है। भारत में डाक्टरों की लापरवाही और मरीजों की नीमहकीमी के अलावा एक समस्या खराब डायग्नोसिस की भी है। देश में अच्छी पैथोलौजी लैब्स कम है और लोग भी दवाओं व डाक्टर की फीस के बाद जांच के तीसरे खर्च से बचना चाहते हैं। बीमारी का बिलकुल सही निर्धारण और उसी के अनुरूप ऐंटीबायोटिक का सटीक इस्तेमाल हमारे जीवनव्यवहार का हिस्सा बनना चाहिए। इस के बजाय अंधाधुंध ऐंटीबायोटिक ले कर हम न सिर्फ अपने बल्कि पूरी दुनिया के स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं।

एंटीबायोटिक हानिकारक जीवाणुओं को खत्म करने के लिए बनाया गया था, जब भी हम बीमार पड़ते हैं डॉक्टर आमतौर पर एंटीबायोटिक लेने को कहते हैं तथा हमें सलाह दी जाती है कि पांच या सात दिन ये दवाइयां लें, नहीं तो जीवाणु पूरी तरह खत्म नहीं होंगे और जिंदा रहकर उनमें दवाई की प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर लेंगे जो ओर अधिक घातक हो सकती है। चिकित्सा प्रतिष्ठानों के अनुसार, इस सिद्धांत का पालन न करना भी एंटीबायोटिक की प्रतिरोधक क्षमता की समस्या का एक प्रमुख कारण है।

स्पष्ट रूप से, स्थिति इतनी गंभीर है कि अनुसंधानकर्ताओं ने भविष्य में "एंटीबायोटिक सदी" की कल्पना की है जिसमें कीमोथेरेपी, अंगों का प्रत्यारोपण अथवा सीजेरियन करना

लगभग असंभव होगा। जबकि गॉनरिया, दिमागी बुखार और टायफाइड जैसे संक्रमण का इलाज नहीं हो पाएगा। जब एंटीबायोटिक के प्रति प्रतिरोधी बैक्टीरिया की खबर सामने आई, जो स्पष्ट तौर पर मल्टी-ड्रग प्रतिरोधी बैक्टीरिया के खिलाफ अंतिम उपाय है, तो इसने शोधकर्ताओं को निराशा और भय से भर दिया।

एंटीबायोटिक रिस कर उद्योगों और घरों से निकलने वाले गंदे पानी के रूप में पीने के पानी में मिलते हैं तथा जल शोधन संयंत्र भी इसे साफ नहीं कर पाते। यह कहना गलत नहीं होगा कि हम असल में बड़ी मात्रा में एंटीबायोटिक निगल रहे हैं। इसे इस तरह समझें की डारविन के जीवन के लिए संघर्ष सिद्धांत के अनुसार रोगाणु, बैक्टीरिया, फफूंदी और जीवाणु- लाखों वर्षों तक एक-दूसरे को हरा कर जीवन की दौड़ में आगे रहना चाहते थे। इस कभी न खत्म होने वाले युद्ध ने न केवल एंटीबायोटिक नामक रासायनिक हथियार को जन्म दिया बल्कि उन्होंने आत्मरक्षा की रणनीति भी ईजाद कर ली। वर्ष 2011 में वैज्ञानिकों को कनाडा के याकुन प्रांत में पर्माफ्रौस्ट के नीचे 30,000 वर्ष पुराना बैक्टीरिया मिला जो आधुनिक एंटीबायोटिक के लिए चुनौती पेश करता है जो बताता है कि रोगाणु पुरातन समय के भी पहले एंटीबायोटिक की प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर चुके थे।

स्पष्ट रूप सेस्थिति अब विकराल हो चुकी है दवा निर्माता कंपनियां एंटीबायोटिक अनुसंधान में और निवेश नहीं करना चाहतीं क्योंकि इसे होने वाला लाभ बहुत कम है। एंटीबायोटिक के दुरुपयोग को रोकने के लिए जागरुकता अभियानों, ऐसी जांचे जिनसे पता चल सके कि व्यक्ति को एंटीबायोटिक की आवश्यकता है अथवा नहीं, और यदि है तो कितनी मात्रा में है, के जरिए सरकारें अपनी ओर से प्रयास कर रही हैं। शुरुआत के तौर पर सरकार डेनमार्क के पदचिह्नों पर चल सकती है जिसने मांस और दुग्ध उत्पादों में एंटीबायोटिक का प्रयोग बंद कर दिया है। जीवाणुओं की प्रतिरोधक क्षमता के इतिहास को देखते हुए हम कम से कम उनके खिलाफ एक सीमा के भीतर तो युद्ध कर ही सकते हैं। जैसा कि विकासवादी जीवविज्ञानी कहते हैं, “हम बैक्टीरिया के युग में रहते हैं (यह आरंभ में भी थे, आज भी हैं और दुनिया के खत्म होने तक रहेंगे)...”।

भूमि प्रदूषण की रोकथाम और समाधान

डॉ.आर.पी.मिश्रा, वैज्ञानिक 'घ' क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल
श्री मिलिंद निमजे, वैज्ञानिक 'ख' क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल

मिट्टी पर्यावरण की बुनियादी इकाई है। बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, शहरों में बढ़ती आबादी और द्रव और ठोस अपशिष्ट अवशेष मिट्टी को प्रदूषित कर रहे हैं। ठोस अपशिष्ट के कारण भूमि प्रदूषण फैलता जा रहा है। ठोस अपशिष्ट अक्सर घरों, पशु शेड, उद्योग, कृषि और अन्य स्थानों से निकलता है। इसका ढेर टापू का रूप धारण कर लेता है जिसमें राख, कांच, फलों, सब्जियों, कागज़, कपड़े, प्लास्टिक, रबड़, चमड़े, रेत, धातु, मवेशी कचरा, गोबर इत्यादि जैसी चीज़ें शामिल होती हैं।

भूमि प्रदूषण को कैसे रोके (भूमि संरक्षण)

मिट्टी एक अमूल्य प्राकृतिक संसाधन है जिस पर संपूर्ण विश्व निर्भर है। भारत जैसे कृषि देश में जहां मिट्टी का क्षरण एक गंभीर समस्या है वहां मिट्टी संरक्षण एक आवश्यक और जरूरी काम है। मृदा संरक्षण एक प्रक्रिया है जिसके तहत न केवल मिट्टी की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए प्रयास किए जाते हैं बल्कि भूमि प्रदूषण को रोकने का प्रयास भी किया जाता है। प्रदूषण की वजह से मिट्टी की उर्वरता कम हो जाती है जिसमें मिट्टी की ऊपरी पोषक तत्वों की हानि, कार्बनिक पदार्थ के नुकसान और पोषक तत्वों और पानी को बनाए रखने के लिए मिट्टी की क्षमता के नुकसान के शामिल है। मिट्टी संरक्षण के दो तरीके हैं - 1) जैविक पद्धति 2) यांत्रिक पद्धति

भूमि प्रदूषण की रोकथाम और समाधान

(1) जैविक पद्धति - फसल संबंधित एवं वन संबंधित

फसल रोटेशन - इसका मतलब है कि एक निश्चित समय-सीमा में भूमि के एक ही भाग पर लगातार फसल बदलना। फसल जैसे गेहूं + सरसों, अरहर + मूँगफली, मक्का + लोबिया आदि फ़सल एक साथ उगा सकते हैं। इस प्रकार एक फसल के बाद तुरंत दूसरी फ़सल उगा दी जाती है ताकि मिट्टी खुली रह कर ख़राब न हो।

कोनों की तरफ से रोपण - मिट्टी के क्षरण को रोकने के लिए एक विशिष्ट तरीके से पौराणिक पौधे, लोबिया और अनाज की फसलें उगाई जा सकती हैं। इससे किसानों को कम से कम निवेश से अधिक लाभ मिलता है और मिट्टी की उर्वरता बढ़ जाती है।

फसल के अवशेष - खेती करते वक़्त 10-15 सेंटीमीटर फसल के अवशेषों की एक पतली लगाकर परत क्षरण और वाष्पीकरण को रोका जा सकता है। इस विधि से रबी की फसल 30 प्रतिशत तक बढ़ सकती है। एक फसल के बाद हमें क्षेत्र में खूंटी छोड़ देनी चाहिए जिससे अप्रत्याशित बारिश और हवा ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचा सके।

संरक्षक बेल्ट - सही तरीके से पेड़ों और झाड़ी को रोपं करके, हवा की दिशा पर निर्भर, हवा की वजह से होते क्षोभ को रोका जा सकता है।

उर्वरकों का उपयोग - गोबर की खाद, हरी खाद और अन्य जैविक खादों का उपयोग मिट्टी के क्षरण को कम करता है।

वन आरोपण विधि: मिट्टी के क्षरण को रोकने में वन बहुत उपयोगी हैं। इसके अंतर्गत दो कार्य आते हैं-

सबसे पहले मिट्टी की उर्वरता और पकड़ को बढ़ाने के लिए नए क्षेत्रों में वनों को विकसित करना होगा। इससे बारिश के पानी और हवा द्वारा मिट्टी क्षरण कम हो जाता है।

दूसरा उस नई जगह में वनों का विकास किया जाना चाहिए जहां अत्यधिक प्रदूषण, अत्यधिक मात्रा में पशुओं को चारा खिलाया जाता हो और मिट्टी की उत्पादकता में गिरावट देखने को मिलती हो।

(2) यांत्रिक पद्धति -यह विधि अपेक्षाकृत महंगी है लेकिन बहुत प्रभावी है

कंटूर होल्डिंग सिस्टम - इस तरह की विधि में खेतों को झुकाव की दिशा में लगाया जाता है ताकि ढलानों के बीच बहने वाली पानी मिट्टी को नष्ट न कर सके।

बांध बनाना - ढलानों के ऊपर स्थित बांध अत्यधिक ढलान वाली जगह में क्षरण को रोकते हैं।

गली नियंत्रण - (i) बाढ़ के पानी को रोककर (ii) वनस्पति आवरण को बढ़ाकर और (iii) अपवाह के लिए नए रास्ते बनाना।

जैविक खेती

मिट्टी प्रदूषण को कम करने के लिए जैविक खेती एक अच्छा विकल्प है। अगर भूमि की उपजाऊ क्षमता कम हो जाती है तो वह दिन भी बहुत दूर नहीं जब भोजन मिलने की समस्या आम हो जाएगी। इससे बचने के लिए हमें पर्यावरण की रक्षा और भूमि प्रदूषण को कम करने की कोशिश करनी चाहिए। हमें ऐसी खेती को बढ़ावा देना चाहिए जहां पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं पहुंचे। आज अधिकांश औद्योगिक कृषि में रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग अत्यधिक होता है। हालांकि कई प्रकार के प्रदूषक भूमि की उर्वरता को नष्ट करने के लिए जिम्मेदार हैं लेकिन रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग मुख्य कारणों में से एक है।

रासायनिक उर्वरक जैसे कि फॉस्फेट, नाइट्रोजन और अन्य रसायन भूमि के पर्यावरण और भूजल संसाधनों को प्रदूषित कर रहे हैं। सबसे खतरनाक प्रदूषक बायोएक्टिव रसायन हैं जिसके कारण जलवायु और मिट्टी के सूक्ष्म जीव नष्ट हो रहे है फ़लस्वरूप मिट्टी की गुणवत्ता में कमी देखने को मिली है। विषाक्त रसायन आहार श्रृंखला में प्रवेश करते हैं ताकि वे भोजन के शीर्ष उपभोक्ता तक पहुंच सकें।

पिछले तीस सालों में जैविक रसायनों के उपयोग में 11 गुना ज्यादा वृद्धि हुई है। अकेले हर साल भारत में लगभग 100,000 टन बायोकैमिकल्स का उपयोग होता है। इन

रसायनों के उपयोग को कम करने और भूमि प्रदूषण को कम करने का सबसे अच्छा तरीका जैविक खेती है।

जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की जगह बैक्टीरिया उर्वरक पोषक तत्व जैसे कि खाद, हरी खाद, जैविक खाद, जैव कीटनाशक और जैव-एजेंट का उपयोग किया जाता है। इससे भूमि की उर्वरता लंबे समय तक बनी रहती है और पर्यावरण प्रदूषित भी नहीं होता और किसानों को फसल की गुणवत्ता में वृद्धि से लाभ भी मिलता है। देश के कई इलाकों में किसानों ने धीरे-धीरे जैविक खेती को अपनाया है जिससे उनकी फसलों की गुणवत्ता में वृद्धि हुई है और उनकी कमाई दोगुनी से ज्यादा हुई है। मध्यप्रदेश, सिक्किम, तमिलनाडु, राजस्थान और पंजाब के किसानों ने कुछ क्षेत्रों में पर्यावरण को स्वच्छ और सुरक्षित बनाने के लिए जैविक खेती को अपनाने के लिए एक अभियान शुरू किया है।

भूमि प्रदूषण पर नियंत्रण करने या दूर करने के उपाय

- कचरे का निपटान एक उचित तरीके से किया जाना चाहिए और जमीन के संपर्क में आने से पहले कारखानों से निकलने वाले कचरे का उचित प्रबंध किया जाना ज़रूरी है।
- रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल को बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिए।
- कीटनाशकों, फंगीसाइड्स आदि का उपयोग कम से कम किया जाना चाहिए।
- भूमि प्रदूषण के खराब प्रभावों के बारे में सामान्य जनता को सूचना दी जानी चाहिए।
- मिट्टी का क्षरण रोकने के लिए वृक्षारोपण, बांध आदि विधियों को प्रयोग में लाया जाना चाहिए।
- नए कीटनाशकों का विकास करना जिसका लक्ष्य कीटों के अलावा अन्य बैक्टीरिया को नष्ट करना हो।
- कृषि गतिविधियों में जैविक खाद और हल्के कीटनाशकों का बढ़ता उपयोग सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
- खेतों में कृषि अवशेषों को न जलाने के लिए किसानों को प्रेरित किया जाना चाहिए।
- भूजल जल स्तर को बढ़ाने के लिए नई तकनीक (वर्षा जल संचयन विविधता) का उपयोग किया जाना चाहिए।
- वैज्ञानिकों द्वारा सुझाए गए रासायनिक मिट्टी सुधारकों जैसे जिप्सम और पाइरिट को लवणता युक्त मिट्टी के सुधार के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए।
- रासायनिक उर्वरक के बजाय कार्बनिक खाद का प्रयोग करें, प्लास्टिक के बजाय पेपर, सूती कपड़े या पॉलिएस्टर के बजाय जूट आदि।

शहरी युग में इकोलोजी

श्री शीतल प्रसाद, प्रशासनिक अधिकारी,, मुख्यालय दिल्ली
श्रीमती फरजना ख़ान डी.ई.ओ. क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल

इक्कीसवीं सदी को शहरी युग की संज्ञा दी जाती है । वर्ष २०५० तक दो-तिहाई मानवता भीड़-भाड़ वाले शहरी वातावरण में समा जाएगी। शहरों की यह अभूतपूर्व वृद्धि अपनी साथ कई पर्यावरणीय चुनौतियां भी लेकर आई है । शहरों में वायु प्रदूषण वर्तमान में मृत्यु के एक प्रमुख कारण के रूप मे उभरा है । मानसून के दौरान बस्तियों में पानी भर जाना भारतीय शहरों में अब सामान्य बात है। हाल में यह समस्या बैंगलुरू, चेन्नई, गुडगांव और मुम्बई में कॉफी विकराल हो गई है। शहरी कामकाज का सबसे स्पष्ट किन्तु उपेक्षित लक्षण यह है कि जिन शहरों में मानसून के दौरान पानी भर जाता है, गर्मियों में उन्हीं शहरों से सूखे के हालात बन जाते हैं।

इन शहरों में पानी की आपूर्ति काफी महंगी होती है। अधिकांश शहरों में पानी किसी दूरस्थ स्त्रोत से आता है और प्राय: इसे लिफ्ट करना पड़ता है। एक ओर तो शहर पानी, भोजन और ऊर्जा दूर-दूर से आयात करते हैं, वहीं अपना कचरा बाहर किसी भराव स्थल पर फेंकते है। इस तरह से वे ग्रामीण पर्यावरण को भी प्रभावित करते हैं।

तेज शहरीकरण के कारण होने वाली पर्यावरणीय समस्याओं के साथ जुड़कर जलवायु परिवर्तन भारत के लिए भी कठिन चुनौतियां प्रस्तुत कर रहा है जिन्हें संभालना अगले कुछ दशकों में मुश्किल हो जाएगा। इसके चेतावनी संकेत मिलने भी लगे हैं जैसे तटवर्ती शहर बाढ़ तथा तूफान जैसी समस्याओं के जोखिम झेल रहे हैं।

भारत के कई सारे शहर पानी का संकट झेल रहे है। इस वर्ष की शुरूआत में दक्षिण एशिया में अभूतपूर्व ग्रीष्म लहर का प्रकोप रहा जिसे मानसून में हुए विलंब, सीमेंट कांक्रीट के शहर, शहरी जलराशियों के सूखने तथा पेड़ों की अंधाधुंध कटाई ने इसे और गंभीर बना दिया है।

शहरों में प्रकृति एक अहम भूमिका अदा करते हुए वहाँ के रहवासियों को पर्यावरणीय क्षति के विपरीत प्रभावों से बचाती है। शहरी पारिस्थितिक तंत्र महत्वपूर्ण पर्यावरणीय सेवाएं प्रदान करता है-नमभूमियां प्रदूषण की सफाई करती है और घट रहे भूजल का पुनर्भरण करती है वहीं पेड़ वायु प्रदूषण कम करने में मददगार होते हैं। पारिस्थितिक तंत्र फल, चारा, जड़ी-बूटियां और जलाऊ लकड़ी उपलब्ध कराते हैं जो अधिकांश शहरी गरीबों के लिए जीवन निर्वाह तथा आजीविका के प्रमुख स्त्रोत है। ये तनाव से राहत देने की महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक भूमिका भी निभाते हैं।

आम तौर पर पर्यावरणविदों ने शहरों की उपेक्षा की है, और अपना लगभग पूरा ध्यान ऐसे क्षेत्रों पर केन्द्रित किया है जहां मानव उपस्थिति इतनी ज्यादा नहीं है। शहर के शोधकर्ताओं ने भी प्रकृति की भूमिका पर बहुत अधिक ध्यान नही दिया है। उनका ज्यादा ध्यान वित्त, इन्फ्रास्ट्रक्चर और गरीबी पर ही ज्यादा रहा है मगर तथ्य यह है कि इकॉलाजी पर ध्यान दिए बगैर शहर ठीक से चल नहीं सकते। यदि हम शेष दुनिया पर शहरों के असर को अनदेखा करेंगे, तो वैश्विक जैव विविधता बच नहीं सकती।

यह आश्चर्य की बात है कि शहर संबंधी नीतियों में शहरी पारिस्थितिक तंत्र और पर्यावरण पर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। इसमें भी चर्चा मात्र नदियों की सफाई, सबके लिए शौचालय या पेड़ लगाने तक सीमित रहती है। यदि राजनैतिक इच्छाशक्ति और नीतिगत ध्यान पर्याप्त् हो, जो फिलहाल नहीं हैं, इस कारण हमारा शहरी पारिस्थितिक तंत्र और पर्यावरण बुरी तरह प्रभिवित हो रहा है। शहरी जल विज्ञान एक और क्षेत्र है जहां हमें और कार्य करने की जरूरत है क्योंकि जो शहरी जलराशियां पहले वर्षा-पोषित हुआ करती थी और भौगोलिक रूप से बदलती रहती थीं वे अब बाहरमासी, मल-जल से पोषित जलराशियां बन गई है जो भौगोलिक रूप से एक ही जगह स्थिर रहती है।

शहरी पर्यावरणीय अनुसंधान के लिए इकॉलॉजीविदों और अन्य विषयों-जैसे राजनीति विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, रसायन, जलविज्ञान, इतिहास और समाज विज्ञान के साथियों के बीच सहयोग की जरूरत होती है। ऐसा होने पर ही शहरी पर्यावरण के मुद्दों की समग्र समझ हासिल हो पाएगी ।

इसी प्रकार से शहरों में बार-बार फैलने वाली महामारियों (जैसे डेंगू) पर अनुसंधान के लिए कचरा निपटान की व्यवस्था, मच्छरों के जीवन चक्र, शहरी पशुधन, मनुष्यों के रोग से संपर्क मेंआने संबंधी व्यवहारगत पहलुओं पोषण संबंधी असमानताओं, वर्षाजल दोहन व भंडारण के तरीकों, आवास के पैटर्न और हरित स्थानों व नमभूमियों के वितरण की जानकारी आवश्यक है।

अंतरविषयी अनुसंधान के लिए जरूरी है कि विभिन्न पृष्ठभूमियों के वैज्ञानिक आपस में सहयोग करें ताकि विश्लेषण व व्याख्या के मिले-जुले तरीके और ढांचे बनाए जा सके। भारत में, जहां सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञानों के बीच सहयोग वैसे ही बहुत सीमित है, वहां विभिन्न वित्तपोषी संस्थाओं की रूचियों में स्पष्ट विभाजन चुनौती को और भी कठिन बना देता है।

इसके लिए शहर नियोजकों, सामुदायिक संगठनों, सामाजिक रूप से सक्रिय समूहों, सिविल सोसायटी व हस्तक्षेप करने वाले अन्य समूहों, शोधकर्ताओं और अध्येताओं के बीच सहयोग की आवश्यकता है जो ज्ञान को कार्रवाई में परिणित करें। इसी तरह का एक उदाहरण बैंगलुरू में झीलों के नवीनीकरण का है । इसमें स्थानीय सामुदायिक समूहों ने नगर निगम, इंजीनियर्स, वास्तुकारों, जलवैज्ञानिकों, प्रकृतिविदों और इकॉलॉजीविदों के साथ काम करके शहरी संदर्भ में झीलों के पुनरूद्धार के विज्ञान और तौर-तरीकोंको लेकर नया विषयपारी ज्ञान विकसित किया । चुनौती इनके टिकाऊपन और इन्हें बड़े पैमाने पर लागू करने की है। विषयपारी प्रयास विविध समूहों के बीच परस्पर विश्वास और एक साझा भाषा के विकास पर टिका होता है। इसके लिए लगातार समय, ऊर्जा और धन का निवेश करना होता है, जो मुश्किल होता है ।

हमारी शहरी पर्यावरणीय व पारिस्थितिक चुनौतियों को संभालने के लिए देश की शोध क्षमताओं का विकास न सिर्फ मौजूदा शहरों को ज्यादा स्वस्थ व जीने योग्य बनाने के लिए बल्कि विकास के वैकल्पिक मॉडल की तलाश के लिए भी जरूरी है।

क्या है जीएम (जेनेटिकली मॉडिफाइड) उत्पाद?

श्री नृपेन्द्र सेमवाल, वैज्ञानिक 'ख' क्षेत्रीय निदेशालय, वडोदरा
श्री मनोज शर्मा, वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक, वडोदरा

विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक जीएम ऑर्गेनिज्म (पौंधे, जानवर, माइक्रोऑर्गेनिज्म) में डीएनए को इस तरह बदला जाता है जैसे प्राकृतिक तरीके से होने वाली प्रजनन प्रक्रिया में नहीं होता। जीएम टेक्नोलॉजी को इन नामों से भी जाना जाता है.

1. जीन टेक्नोलॉजी
2. रिकॉम्बिनेंट डीएनए टेक्नोलॉजी
3. जैनेटिक इंजीनियरिंग

कैसे बनता है जीएम?

सरल भाषा में जीएम टेक्नोलॉजी के तहत एक प्राणी या वनस्पति के जीन को निकालकर दूसरे असंबंधित प्राणी/वनस्पति में डाला जाता है। इसके तहत हाइब्रिड बनाने के लिए किसी माइक्रोऑर्गेनिज्म में नपुंसकता पैदा की जाती है। जैसे जीएम सरसों को प्रवर्धित करने के लिए सरसों के फूल में होने वाले स्व-परागण (सेल्फ पॉलिनेशन) को रोकने के लिए नर नपुंसकता पैदा की जाती है। फिर हवा, तितलियों, मधुमक्खियों और कीड़ों के ज़रिये परागण होने से एक हाइब्रिड तैयार होता है। इसी तरह बीटी बैंगन में प्रतिरोधकता के लिए ज़हरीला जीन डाला जाता है ताकि बैंगन पर हमला करने वाला कीड़ा मर सके।

क्या मकसद है?

वैज्ञानिकों का दावा है कि जीएम फसलों की उत्पादकता और प्रतिरोधकता अधिक होती है. इन तकनीक के ज़रिये सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं से लड़ने वाली नस्लें तैयार की जा सकती हैं। बीटी बैंगन के मामले में कीड़े से अप्रभावित रहने वाली फसल और जीएम सरसों के

मामले में कीटनाशक को सहने वाली (हर्बीसाइड रेज़िस्टेंस) फसल उगाने का दावा किया जा रहा है।

इतिहास

इस तरीके से पहली बार १९९० में फसल पैदा की गयी थी। सबसे पहली इस विधि से टमाटर को रूपांतरित किया गया था। कैलिफॉर्निया की कंपनी कैलगेने ने टमाटर के धीरे-धीरे पकने के गुण को खोजा था, तब उस गुण के गुणसूत्र में परिवर्तन कर ये नयी फसल निकाली थी।

कौन से देश उगा रहे हैं जीएम फसल?

वैसे तो आज दुनिया के 28 देशों में किसी न किसी स्तर पर जीएम फसल (खाद्‌य या अखाद्‌य) उगाई जा रही हैं या उगाने की तैयारी है लेकिन इसकी अधिक पैदावार केवल 6 देशों में ही हो रही है। ये 6 देश हैं - अमेरिका, ब्राज़ील, कनाडा, चीन, भारत और अर्जेंटीना। दुनिया में कुल 18 करोड़ हेक्टेयर में इसकी खेती हो रही है और उसमें 92% हिस्सा इन 6 देशों की कृषि भूमि का ही है, इसमें अमेरिका हिस्सा 40% और ब्राज़ील का हिस्सा 25% है जबकि बाकी 27% भारत, चीन, कनाडा और अर्जेंटीना की कृषि भूमि है जहां जीएम पैदावार हो रही है।

मुख्य जीएम फसलें

दुनिया में जितनी भी जीएम फसल पैदा हो रही है उसमें सोयाबीन, मक्का, कपास, कैनोला (सरसों) का हिस्सा 99% है। यानी यही चार मुख्य फसलें हैं जो जीएम फसलों के तहत दुनिया में उगाई जा रही हैं, बाकी 1% में आलू, पपीता, बैंगन जैसी फसलें हैं जिन्हें कुछ देश उगा रहे हैं।

विवाद क्या है?

जहां वैज्ञानिक उत्पादकता, प्रतिरोधकता का तर्क दे रहे हैं वहीं सामाजिक कार्यकर्ताओं ने सवाल उठाया है कि जीएम फसलों का स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ेगा, इस पर विस्तृत और पूरा अध्ययन नहीं किया गया है। हालांकि डब्लूएचओ की वेबसाइट बताती है कि दुनिया के जिन देशों में जीएम फसलें उगाई जा रही हैं वहां की मानक एजेंसियों ने कहा है कि ऐसे प्रमाण नहीं मिले हैं कि इस फसलों का स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव पड़ रहा हो। विवाद जैव-

विविधता यानी बायो डायवर्सिटी को लेकर भी है। सामाजिक संगठनों का कहना है कि इस बारे में अध्ययन किए जाने की ज़रूरत है कि हमारे देश की जैव विविधता पर जीएम फसलों से बुरा असर तो नहीं पड़ेगा।

आर्थिक जंग

जीएम फसलों को लेकर आर्थिक पहलू काफी अहम और विवाद खड़े करने वाला है। अमेरिका का जीएम फसलों के उत्पादन में बड़ा हिस्सा है और इसलिए वह चाहता है कि वैश्विक बाज़ार में जीएम को लेकर अधिक से अधिक स्वीकार्यता और सहमति बने। यह महत्वपूर्ण है कि अमेरिका ही नहीं बल्कि जर्मनी और स्विट्ज़रलैंड जैसे देशों की कंपनियां इसमें पेटेंट अधिकारों को लेकर बड़ी मुहिम चला रही हैं।

हल क्या है ?

जीएम को लेकर चल रही बहस के बीच ये कहना बड़ा कठिन है कि आखिर लकीर कहां खींची जाए लेकिन एक महत्वपूर्ण हल सुझाया जाता है कि पैकेजिंग कानूनों को मज़बूत किया जाए और उन्हें सख्ती से लागू किया जाए. यानी जीएम फूड को बेचते वक्त पैकेट पर लगे लेबल पर सभी जानकारियां साफ-साफ लिखी हों। इससे लोगों को पता चल सकेगा कि वह क्या खा रहे हैं। इस तरह जिन लोगों को जीएम फूड से दूर रहना हो वह इसका इस्तेमाल नहीं करेंगे।

आलोचना

कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार विश्व भर में खाद्य पदार्थो में कमी का कारण खराब वितरण है न कि उत्पादन में कमी। तब ऐसी फसलों के उत्पादन पर जोर नहीं दिया जाना चाहिये, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हों। भारत की जैवप्रौद्योगिकी नियामक संस्था द जेनेटिक इंजीनियरिंग एप्रूवल कमेटी (बायोटेक) आनुवांशिक बदलाव किये गये बैंगन को मान्यता देने पर विचाराधीन है।

जीएम फसलों पर अभी तक संशय बरकरार

भारत की अकेली जीएम 'फसल' बीटी कॉटन की खेती वर्ष 2002 में, अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनी मोनसैंटो और महाराष्ट्र हाइब्रिड सीड कंपनी की साझेदारी से शुरू हुई थी। एक दशक तक तो बीटी कपास की खूब अच्छी पैदावार हुई, क्योंकि जीएम फसलों की खासियत यह होती है कि अधिक उर्वर होने के साथ ही, इनमें अधिक कीटनाशकों की जरूरत नहीं होती और ये सूखा-रोधी और बाढ़-रोधी भी होती हैं। लेकिन कुछ सालों के बाद स्थिति ये नहीं रही और बीटी कपास की फसलों में कृमि आने शुरू हो गए। महंगे बीजों, कीटनाशकों और बर्बाद हुई खेती के चलते हजारों बीटी कपास किसानों ने आत्महत्या की। 2014 में जर्मनी की गोटिंजेन यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने पूरे विश्व में किए गए अपने कृषि सर्वेक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि जीएम प्रौद्योगिकी से फसलों की पैदावार में 22 फीसद की बढ़त होती है, 37 फीसद कम कीटनाशक डालने पड़ते हैं और किसानों की आय 68 फीसद बढ़ जाती है और यह प्रौद्योगिकी विकसित देशों के मुकाबले विकासशील देशों के लिए अधिक लाभकारी है। दुसरी तरफ संयुक्त राष्ट्र के अनुसार साल 2050 तक दुनिया की आबादी का पेट भरने के लिए आज से 70 फ़ीसदी ज्यादा खाद्य की जरूरत होगी। इसलिए पैदावार बढ़ाने के लिए खेती में नए प्रयोगों को महत्त्व देना होगा ।

हालांकि विभिन्न राज्यों में अनेक जीएम फसलों की खेती पर प्रयोग चल रहे हैं, लेकिन अभी तक केवल बीटी कपास पर सरकारी स्वीकृति मिली हुई है, जबकि अमेरिका में मक्का, सोयाबीन, कपास, कनोला, चुकंदर, पपीता, आलू; कनाडा में कनोला, सोयाबीन, चुकंदर; चीन में कपास, पपीता और पॉप्लर; अर्जेंटीना में सोयाबीन, मक्का, कपास, ब्राजील में सोयाबीन, मक्का, कपास तथा बांग्लादेश में बैंगन की जीएम खेती आधिकारिक रूप से होती है। अफ्रीका सहित कुछ अन्य देश हैं जो केवल मक्का और कपास की जीएम खेती करते हैं। फ्रांस और जर्मनी सहित यूरोपीय संघ के उन्नीस देशों में जीएम खेती पर पूर्ण प्रतिबंध है। भारत में इस प्रौद्योगिकी का विरोध करने वालों का कहना है कि हमारे देश में कृषि में इतनी जैव-विविधता है, जो जीएम प्रौद्योगिकी को अपनाने से खत्म हो जाएगी। जीएम खाद्य का दो तरह से इंसानों के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ सकता है- एक तो उसे खाने से, दूसरा उन पशुओं के दूध और मांस के जरिए जो जीएम चारा खाते हों।

वर्तमान में जी एम फसलों पर और अधिक शोध की आवश्यकता है तथा भारतीय परिपेक्ष्य मे यह कितनी उपयोगी है इसका निर्धारण किया जाना अत्यंत आवश्यक है एवं इसके गुण दोष व दीर्घकालीन अध्यन के आधार पर ही इसको उत्पदन की अनुमति प्रदान की जाना चाहिए।

प्लास्टिक प्रदूषण वर्तमान परिपेक्ष्य में

डॉ.चन्द्रकान्त दीक्षित, वैज्ञानिक 'ख' क्षेत्रीय निदेशालय लखनऊ
श्री. आर.के.मिश्रा जे.एस.ए, क्षेत्रीय निदेशालय, लखनऊ

वर्तमान समय में प्लास्टिक प्रदूषण एक गंभीर विश्वव्यापी समस्या बन गई है। संपूर्ण देश-धरती में प्रत्येक वर्ष अरबों की संख्या में प्लास्टिक थैलियाँ फेंक दी जाती है। हर तरफ बिखरे यही प्लास्टिक थैलियाँ नालियों, नालों में जाकर उनके प्रवाह को अवरूद्ध करती है जो बारिश के मौसम में जल भराव का एक प्रामुख कारण बनता है और अंतत: यह नदियों के माध्यम से सागरों में पहुँच जाती है ओर वहाँ के परस्थितिकी पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। यह चूंकि प्लास्टिक प्राकृतिक रूप से विघटित नहीं होता इसलिए नदियों, सागरों आदि के जीवन और पर्यावरण को बुरी तरह से प्रभावित करता है। प्लास्टिक प्रदूषण के कारण आज वैश्विक स्तर पर लाखों की संख्या में पशु पक्षी मारे जा रहे हैं जो पर्यावरण संतुलन की दृष्टि से अत्यधिक चिंतनीय पहलु है।

सरकार ने पूर्ववर्ती प्लास्टिक कचरा (प्रबंधन एवं संचालन) नियम, 2011 के स्थान पर प्लास्टिक कचरा प्रबंधन नियम, 2016 अधिसूचित किये हैं। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के अनुसार प्लास्टिक कैरी बैग की न्यूनतम मोटाई 40 माइक्रॉन से बढ़ाकर 50 माइक्रॉन कर दी गई है। मंत्रालय ने यह भी बताया की जो नियम पहले नगर निगम के क्षेत्रों तक ही स्वीकार्य थे, उन्हें़र अब सभी गांवों तक बढ़ा दिया गया है। नए प्लास्टिक कचरा प्रबंधन नियमों को अधिसूचित किया जाना समस्ता कचरा प्रबंधन नियमों में बदलाव का ही एक हिस्सा है और इससे हमारे प्रधानमंत्री के स्वच्छ भारत मिशन को पूरा करने में मदद मिलेगी।

मसौदा नियमों, अर्थात प्लास्टिक कचरा प्रबंधन नियम 2015 को भारत सरकार द्वारा भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। इसके लिए जी.एस.आर. 423 (ई), दिनांक 25 मई, 2015 को देखिए। प्लास्टिक कचरा प्रबंधन नियम, 2016 के उद्देश्य) ये हैं:

• प्लास्टिक कैरी बैग की न्यूनतम मोटाई को 40 माइक्रॉन से बढ़ाकर 50 माइक्रॉन करना

• नियमों पर अमल के दायरे को नगरपालिका क्षेत्र से बढ़ा कर ग्रामीण क्षेत्रों तक कर देना, क्योंकि प्लास्टिक ग्रामीण क्षेत्रों में भी पहुंच गया है

• प्लास्टिक कैरी बैग के उत्पादकों, आयातकों एवं इन्हें बेचने वाले वेंडरों के पूर्व-पंजीकरण के माध्यम से प्लास्टिक कचरा प्रबंधन शुल्क के संग्रह की शुरुआत करना

प्लास्टिक मुख्य रूप से पेट्रोलियम पदार्थों से उत्सर्जित सिंथेटिक रेजिन से बना है। रेजिन में प्लास्टिक मोनोमर्स अमोनिया और बेंजीन का संयोजन करके बनाया जाता है। प्लास्टिक में क्लोरीन, फ्लोरीन, कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और सल्फर के अणु शामिल हैं। 19, फरवरी, 2018 को संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण के प्रमुख ने संयुक्त रूप से घोषणा की कि भारत विश्व पर्यावरण दिवस 5 जून 2018 को अंतर्राष्ट्रीय समारोह की मेज़बानी करेगा। विश्व पर्यावरण दिवस 2018 का विषय, "प्लास्टिक प्रदूषण", सरकारों से, उद्योग जगत से, समुदायों और सभी लोगों से अनुरोध करता है कि वे साथ मिलकर प्लास्टिक का स्थाई विकल्प खोजें और एक बार उपयोग में आने वाले प्लास्टिक के उत्पादन और उपयोग का जल्द से जल्द विकल्प उपलब्ध कराएं, क्योंकि प्लास्टिक हमारे महासागरों को प्रदूषित कर रहा है, जलीय जीवन को नष्ट कर रहा है और अब मानव स्वास्थ्य के लिए भी खतरा बन गया है साथ ही यह हमारी भोजन श्रृंखला मे भी समाहित हो रहा है।

विश्व पर्यावरण दिवस 2018 की मेज़बानी कर, भारत सरकार एक बेहद ज्वलंत मुद्दे के नेतृत्व का बीड़ा उठाया था। प्लास्टिक प्रदूषण से जुड़े कुछ तथ्य निम्न है :

- प्रत्येक वर्ष पूरी दुनिया में 500 अरब प्लास्टिक बैगों का उपयोग किया जाता है।
- हर वर्ष, कम से कम 8 मिलियन टन प्लास्टिक महासागरों में पहुंचता है, जो प्रति मिनट एक कूड़े से भरे ट्रक के बराबर है।
- पिछले एक दशक के दौरान उत्पादित किये गए प्लास्टिक की मात्रा, पिछली एक शताब्दी के दौरान उत्पादित किये गए प्लास्टिक की मात्रा से अधिक थी ।
- हमारे द्वारा प्रयोग किये जाने वाले प्लास्टिक में से 50% प्लास्टिक का उपयोग सिर्फ एक बार ही होता है।
- हर मिनट 10 लाख प्लास्टिक की बोतलें खरीदी जाती हैं ।
- हमारे द्वारा उत्पन्न किए गए कुल कचरे में 10% योगदान प्लास्टिक का होता है।

इस बार विश्व पर्यावरण दिवस की थीम थी 'बीट प्लास्टिक पोल्यूशन' इस थीम का उद्देश्य प्रकृति के द्वारा उपहार स्वरूप दिये गये वास्तविक रूप में अपने ग्रह को बचाने के लिये उत्सव के माध्यम से सभी लोगों को सक्रियता से शामिल करना। इस थीम को सार्थक बनाने के लिये अनेक गतिविधियां जैसे-स्वच्छता अभियान, वृक्षारोपण, प्रदर्शनी, कूड़े के पुनःचक्रण संबंधी फिल्में, पोस्टर प्रतियोगिता, सोशल मीडिया अभियान आदि का आयोजन किया गया ताकि एक सार्थक पहल का शुभारंभ किया जा सके। वर्तमान परिपेक्ष्य में देखा जाए तो जन-सामान्य में पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ी है एवं इसके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने हेतु इस तरह के आयोजन इसकी सार्थकता को पूर्ण करते हैं।

संपूर्ण विश्व में प्लास्टिक अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुका है और दुनिया के सभी देश इससे निर्मित वस्तुओं का किसी न किसी रूप में उपयोग कर रहे हैं। विचारणीय विषय यह है कि सभी इसके दुष्प्रभावों से अनभिज्ञ हैं या जानते हुए भी अनभिज्ञ बने जा रहे हैं। पॉलीथीन एक प्रकार का जहर है जो पूरे पर्यावरण को नष्ट कर रहा है और भविष्य में हम यदि इससे छुटकारा पाना चाहेंगे तो हम अपने को काफी पीछे पाएँगे और तब तक सम्पूर्ण पर्यावरण इससे दूषित हो चुका होगा।

प्लास्टिक नैसर्गिक रूप से विघटित होने वाला पदार्थ नहीं होने के कारण एक बार निर्मित हो जाने के बाद यह प्रकृति में स्थाई तौर पर बना रहता है तथा प्रकृति में इसे नष्ट कर सकने वाले किसी सक्षम सूक्ष्म जीवाणु के अभाव के कारण यह कभी भी नष्ट नहीं हो पाता इसलिए गंभीर पारिस्थितिकी संतुलन उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण वातावरण प्रदूषित हो जाता है। यह जल में भी अघुलनशील होने के कारण नष्ट नहीं होता और जल प्रदूषण बढ़ाता है तथा वृहद स्तर पर जल प्रवाह को बाधित करता है जिससे ऐसे दूषित जल में मक्खियाँ, मच्छर एवं जहरीले कीट पैदा होते हैं जिससे मलेरिया, डेंगू जैसे रोग फैलते हैं।

प्लास्टिक पैकिंग से खाद्य सामग्री भोजन एवं औषधियों के पैक किये जाने से इनके साथ प्लास्टिक रासायनिक प्रक्रिया करके उन्हें दूषित और खराब कर देता है। इनके उपयोग से

मानव जीवों को जान का खतरा उत्पन्न हो जाता है तथा भयानक बीमारियों से ग्रसित कर देता है। प्लास्टिक को जलाये जाने से निकलने वाली विषाक्त गैसों के परिणाम स्वरूप गंभीर वायु प्रदूषण फैलता है जिससे कैंसर, शारीरिक विकास में अवरोध होना एवं जघन्य रोग उत्पन्न हो जाते है। प्लास्टिक को गढ्ढों में गाड़ दिये जाने से पर्यावरण को हानि पहुंचती है, मिट्टी और भूमिगत जल विषाक्त होने लगता है और धीरे-धीरे पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ने लगता है। प्लास्टिक उद्योग में कार्य करने वाले श्रमिकों के स्वास्थ्य पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है विशेषकर फेफड़े, किडनी और स्नायुतंत्र प्रभावित होते है।

ये परिवर्तन धीरे-धीरे हमारी समस्या को कम कर सकते है और प्लास्टिक के प्रति हमारे आकर्षण को भी कम कर सकते हैं; इसलिए हमें छोटे-छोटे कदम उठाकर प्लास्टिक प्रदूषण को कम करने में योगदान देना चाहिए। यह वह समय है जब हम कुछ निवारक कदम उठाकर अपने भविष्य की पीढ़ियों के लिए बेहतर जीवन सुनिश्चित कर सकते है।

क्यों आवश्यक है अपशिष्ट जल का पुनर्प्रयोग ?

श्री विनय उपाध्याय, वैज्ञानिक 'ख'
आई.पी.सी।-V ॥ प्रभाग, दिल्ली

भारत की शहरी आबादी साल 1901 के 258 लाख से बढ़कर 2011 में जनगणना के मुताबिक 3870 लाख हो गई है। इस वजह से देश के शहर और कस्बे दो बड़ी मुश्किलों से जूझ रहे हैं - पानी की किल्लत और अपशिष्ट जल का बढ़ता भार। बढ़ती जनसंख्या की बढ़ती पानी की मांग को नगरपालिका के अपशिष्ट जल के शोधन करके ही पूरा किया जा सकता है क्यूंकी शुद्ध जल का कोई विकल्प कम होते जा रहे है।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के 2008-09 के आँकड़ो के मुताबिक पहले दर्जे और दूसरे दर्जे के शहरों में रोजाना करीब 38,254 मिलियन लीटर गंदा पानी और कचरा इकट्ठा होता है। हालांकि, इन शहरों के पास सिर्फ 12000 मिलियन लीटर प्रति दिन गंदा पानी साफ करने की क्षमता है, जो कुल अपशिष्ट जल का महज 31 फीसदी है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के 2015 के आँकड़ो के आधार पर यह ज्ञात होता है कि भारत के कुल 28 राज्यों मे 816 एस.टी.पी. है जिनकी कुल उपचार क्षमता 23277 मिलियन लीटर प्रति दिन है, इसमे 522 एस.टी.पी. कार्यशील हैं, 79 कार्यशील नही है, 145 निर्माणाधीन है तथा 70 प्रस्तावित है। आँकड़ों से यह भी ज्ञात होता है कि वर्तमान में लगभग 60,000 मिलियन लीटर सीवेज उत्पन्न होता है जो कि उपलब्ध उपचार क्षमता से कम है। ताजा पानी के स्रोत्र पर निर्भरता को कम करने के लिए और पानी की मांग को पूरा करने के लिए जरूरी है कि कुल निकलने वाले अपशिष्ट जल और प्रशोधन क्षमता के अंतर को कम किया जाए।

Recycle your water inside and out

जल स्रोत्रों को प्रदूषित करने वाले अपशिष्ट जल की भारी मात्रा को साफ करने की क्षमता वर्तमान में नगरपालिकाओं के पास नहीं है, इसके कारण शहरी प्रदूषित जल बिना उपचार के ही स्थानीय जल स्त्रोतों में प्रवहित हो रहा है तथा उन्हे समान्य उपयोग हेतु अयोग्य बना रहा है। प्रदूषित पानी के सेवन से कई गंभीर बीमारियां हो सकती हैं जिनसे मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

शहरी अपशिष्ट जल प्रबंधन

बेहतर जिंदगी की तलाश में लोगों के लगातार शहरों में आकर बसने से शहरों के इंफ्रास्ट्रक्चर में सुधार की जरूरत महसूस होने लगी है। अनुमान है कि साल 2050 तक देश की 50 फीसदी आबादी शहरों और कस्बों में होगी। जहां पानी की बढ़ती मांग को पूरा करने की जरूरत है, वहीं गंदे पानी और कचरे के प्रबंधन के मुद्दे पर जोर दिया जाना चाहिए। 2011 की जनगणना के मुताबिक सिर्फ 32.7 फीसदी शहरी निवासी नाली व्यवस्था से जुड़े हैं और शहरी इलाकों में रहने वाले 12.6 फीसदी लोग खुले में शौच करते हैं। ये आंकड़े दर्शाते हैं कि सभी नागरिकों के लिए योग्य शौचायल व्यवस्था करना देश के लिए अब भी बड़ी चुनौती बनी हुई है। शहरों में अवैध इमारतें और झुग्गियों के निर्माण से ये दिक्कत और भी बढ़ गई है। इन इमारतों और झुग्गियों से निकला गंदा पानी के उन जल स्रोत्रों में जाकर मिल जाता है जहां से नगरपालिकाएं पानी की आपूर्ति करती हैं। इसलिए जरूरी है कि अपशिष्ट जल को साफ किया जाए, ताकि प्रदूषण पर काबू पाया जा सके।

जलजनित बीमारियां - गंभीर चिंता

भारत में हर साल 1 लाख से भी ज्यादा लोगों की जलप्रसारित बीमारियों की वजह से मौत होती है। नवीनतम आंकड़ों के मुताबिक भारत के कुल रोगियों में 77 फीसदी हैजा, पीलिया, दस्त, मियादी बुखार (टाइफाइड) जैसी जलप्रसारित बीमारियों से पीड़ित होते हैं। जल प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि इससे देश के 70 फीसदी घरों पर असर होता है। योग्य शौचालयों और आरोग्य व्यवस्था का अभाव जल प्रदूषण की बड़ी वजह है।

जलजनित बीमारियों में सबसे गंभीर रोग दस्त है, जिससे सबसे ज्यादा बच्चों की मौत होती है। वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन के आंकड़ों के मुताबिक हर साल भारत में दस्त की वजह से 98,000 बच्चे जान गंवाते हैं। अगर इस स्थिति में सुधार लाना है तो शहरी विकास में अपशिष्ट जल प्रशोधन को प्राथमिकता देना जरूरी है।

पानी की किल्लत दूर करने और जलजनित बीमारियों पर काबू पाने के लिए अपशिष्ट जल को सही तरीके से साफ करने की जरूरत है। अपशिष्ट जल के प्रशोधन के बाद उसे शहरों में सिंचाई, धुलाई और शौचालयों में इस्तेमाल किया जा सकता है। कई बड़े कैंपस, रिहायशी प्रोजेक्ट ने अपने परिसर में ही साफ किए गए पानी का पुनर्प्रयोग करना शुरू कर दिया है साथ

ही स्थानीय निकायो द्वारा भी बड़े रहवासी क्षेत्रों मे अपशिष्ट जल शोधन संयंत्र लगाने पर ज़ोर दिया जा रहा है व उस पानी की बागवानी आदि मेन उपयोग किया जा रहा है।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के मुताबिक भारत की कुल 445 नदियों में से अधिकतर नदियों का पानी बिना उपचार के पीने के योग्य नहीं है। अपशिष्ट जल को साफ करके ये सुनिश्चित किया जा सकता है कि गंदे पानी से जल स्रोत्र प्रदूषित नहीं होंगे। जल संसाधनों का प्रबंधन किसी भी देश के विकास का एक अहम संकेतक होता है। अगर इस मानदंड पर भारत खरा उतरता है तो देश को ताजे पानी पर निर्भरता घटानी होगी और अपशिष्ट जल के प्रशोधन को बढ़ावा देना होगा।

विस्तृत और दीर्घकालीय विकास को ध्यान में रखते हुए सरकार की बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) में बढ़ती जनसंख्या की उभरने वाले पानी से जुड़ी चुनौतियों पर जोर दिया गया है। कई ग्रामीण इलाकों और कस्बों में पीने के साफ पानी और शौचालयों की योग्य व्यवस्था नहीं है। शौचायलों और नालियों की योग्य व्यवस्था के अभाव में अपशिष्ट जल साफ पानी को प्रदूषित कर सकता है और इससे कई गंभीर बीमारियों हो सकती हैं। पानी के अतिरिक्त भंडारण और भूजल स्तर को कायम रखने के लिए कदम उठाए जाने से 20 फीसदी मांग को पूरा किया जा सकता है। बाकी मांग को पूरा करने के लिए पानी का किफायती इस्तेमाल करना होगा। पिछले 60 सालों में सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम पर किए जाने खर्च में काफी बढ़ोतरी हुई है।इनमें से कई भारत के विकास के लिए जल संरक्षण को प्राथमिकता दिए जाने के साथ ही रिपोर्ट में अपशिष्ट जल प्रबंधन पर भी खासा जोर दिया गया है।

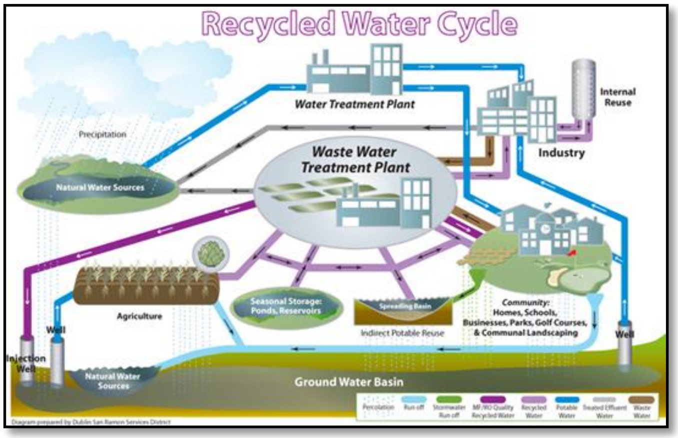

अपशिष्ट जल का प्रबंधन

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुमान के मुताबिक भारत के पास इकट्ठा होने वाले कुल अपशिष्ट जल के सिर्फ 30-40 फीसदी का ही प्रशोधन करने की क्षमता है। इसका मतलब बाकी 60-70 फीसदी अपशिष्ट जल के झीलों, झरनों और नदियों में मिलकर उन्हें प्रदूषित करने का खतरा होता है। महानगरों में जहां से देश का 20-25 फीसदी अपशिष्ट जल निकलता है, वहां भी करीब 30-40 फीसदी प्रशोधन क्षमता ही उपलब्ध है। वहीं, ज्यादातर दूसरे शहरों में अपशिष्ट जल का बेहद कम हिस्सा ही प्रशोधन के लिए भेजा जाता है। शहरी विकास योजना बनाने वालों को अपशिष्ट जल के पर्याप्त प्रशोधन क्षमता के साथ-

साथ गंदे पानी के उपचार संयंत्र तक पहुंचाने की व्यवस्था करना भी जरूरी है। जल संरक्षण और बेहतर अपशिष्ट जल प्रबंधन की अहमियत को समझते हुए निम्न विकल्प पर जोर दिया जाना चाहिये जैसे:

1. जल आपूर्ति में निवेश पर ज़ोर देने के कार्यक्रम के तहत मांग प्रबंधन, शहरों के बीच असामनता को घटाना और पानी की गुणवत्ता को सुधारना।
2. जलाशयों को बचाना और उनकी सुरक्षा करना।
3. किसी भी जल योजना को बिना अपशिष्ट प्रबंधन के मंजूरी न देना।
4. जल प्रबंधन के तहत दूषित जल साफ करना और दोबारा उपयोग में लाना।
5. साफ किए अपशिष्ट जल के फिर से इस्तेमाल की योजना।
6. क्षेत्रीय स्तर जल संरक्षण की योजना बनाना।

पर्यावरण शिक्षा

श्री.एस.डी.बोकड़े, अनुभाग अधिकारी, क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल
श्री.अनिल कुमार, लेखा सहायक, क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल

हमारी कल्पना की तुलना में पर्यावरण बहुत हीतेजी से प्रदूषित हो रहा है। ज्यादातर मानव गतिविधियों के कारण पर्यावरण दूषित होताहै। जिससे वैश्विक और क्षेत्रीय दोनों स्तर प्रभावित होतें हैं। ओजोन परत का पतला होना और ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन में वृद्धि वैश्विक स्तर पर होने वाले नुकसानों के उदाहरण हैं। जबकि जल प्रदूषण, मृदा अपरदन मानव गतिविधियों द्वारा रचित कुछ क्षेत्रीय परिणामों में से एक हैं और उनके द्वारा पर्यावरण को भी प्रभावित किया जाता है।

इसलिए, हम लोगों द्वारा जो कुछ भी पर्यावरण प्रदूषणको बढ़ाने में गलत कार्य किये गए है, उसे केवल स्वयं हम लोगों को ही सुधारना चाहिए। पर्यावरण की सुरक्षा और प्रबंधन के लिए हमारी आवाज पर्यावरण शिक्षा के लिए आवश्यक है। यह लोगों और समाज को वर्तमान एवं भविष्य के संसाधनों का बेहतरीन ढंग से उपयोग करने के तरीके को सिखाने का एक सही कदम है। पर्यावरण शिक्षा के जरिए, सभी लोग स्थानीय प्रदूषण की ओर अग्रसर होने वाले मौलिक मुद्दों को सही करने का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

पर्यावरणशिक्षा क्या है?

पर्यावरण शिक्षा में लोगों को बताया जाता है कि प्राकृतिक पर्यावरण के तरीके और प्रदूषण मुक्त पर्यावरण को बनाए रखने के लिए पारिस्थितिकी तंत्र को कैसे व्यवस्थित रखना चाहिए? इससे संबंधित चुनौतियों का सामना करने के लिए पर्यावरण शिक्षा आवश्यक

कौशल और विशेष ज्ञान को प्रदान करता है। इस शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ज्ञान प्रदान कराना, जागरूकता पैदा करना, चिंतन का एकदृष्टिकोण पैदा करना और पर्यावरणीय चुनौतियों को नियंत्रित करने के आवश्यक कौशल को प्रदान करना है।

1972 में यूनेस्को द्वारा आयोजित मानव पर्यावरण पर स्टॉकहोम सम्मेलन के बाद पर्यावरण शिक्षा ने वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठा हासिल की थी। इस सम्मेलन के तुरंत बाद यूनेस्को ने अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम (आई.ई.ई.पी) की भी शुरूआत की थी।

क्यों आवश्यक है पर्यावरण शिक्षा?

प्रत्येक देश शिक्षा के साथ पर्यावरणीय संबधी चिंताओं को सुलझाने के प्रयासों में लगा रहा है। इन विभिन्न देशों के अनुसार, पर्यावरण शिक्षा को केवल शिक्षा प्रणाली का ही हिस्सा नहीं होना चाहिए बल्कि राजनैतिक व्यवस्था में भी भाग लेना चाहिए जिससे राष्ट्रीय स्तर पर कार्य, नीतियाँ और उचित योजनाएं तैयार की जा सकें।

पर्यावरणीय शिक्षा को पर्यावरण की स्थिति का आँकलन करने में सक्षम होना चाहिए और पर्यावरण की क्षति का निवारण करने में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। पर्यावरण शिक्षा को नियमानुसार योजनापूर्ण बनना चाहिए क्योंकि दैनिक जीवन में सामान्य बदलाव पर्यावरण को सुधारने में ये बहुत बड़ा योगदान दे सकते हैं।

पर्यावरण की सुरक्षा हर किसी की जिम्मेदारी है। इसलिए पर्यावरण शिक्षा एक समूह या समाज तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए बल्कि हर व्यक्ति को पर्यावरण के बचाव संबंधी जानकारी होनी चाहिए। यह एक निरंतर और जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया होनी चाहिए तथा पर्यावरण शिक्षा के प्रति व्यावहारात्मक होना चाहिए ताकि इसे भलीभाँति लागू किया जा सके।

अगर बच्चों को संसाधनों, पर्यावरणीय प्रदूषण, मृदा अपरदन, अवनति और संकटग्रस्त पौधों एवं विलुप्त जानवरों के बचाव तथा संरक्षण के बारे में सिखाया जाता है तो पर्यावरण के संरक्षण में काफी हद तक सुधार हो सकता है। पर्यावरण शिक्षा एक तरह का निवेश है जो समय के साथ-साथ एक मूल्यवान संपत्ति में बदल जाता है।

भारत के विश्वविद्यालयों में शिक्षण, अनुसंधान और प्रशिक्षण पर काफी ध्यान दिया गया है। 20 से अधिक विभिन्न विश्वविद्यालयों और संस्थानों में पर्यावरण इंजीनियरिंग,

संरक्षण और प्रबंधन, पर्यावरण स्वास्थ्य और सामाजिक विज्ञान जैसे पाठ्यक्रमों को पढ़ाया जाता है।

राष्ट्रव्यापी पर्यावरण जागरूकता को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार ने पर्यावरण और वन मंत्रालय के समर्थन से अगस्त 1984 में पर्यावरण शिक्षा केंद्र (सी.ई.ई) स्थापित किया था। सी.ई.ई के प्रमुख कार्यों में से एक यह है कि पर्यावरण शिक्षा की भूमिका को उचित मान्यता देने का प्रयास किये जाये। सी.ई.ई इससे संबंधित कई शैक्षिक कार्यक्रमों को चलाती है।

सामाजिक बदलावों के कारण आज के बच्चे आंतरिक खेलों और इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों को खेलने में व्यस्त रहते हैं। वे अपना अधिकांश समय टेलीविजन देखने, संगीत सुनने, वीडियो गेम खेलने या इंटरनेट पर सर्फिंग या कंप्यूटर का उपयोग करने में बिता देतें हैं और उनके पास चारों ओर यात्रा करने एवं चारों ओर प्राकृतिक दुनिया के बारे में जानने के लिए बिल्कुल भी समय नहीं है। इससे न केवल बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है बल्कि उन्हें अपने परिवेश और प्रकृति से विलगाव जैसी स्थित का सामना करना पड़ता है। छात्रों को अपने परिवेश से परिचित कराने के लिए, प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और उनके लिए कार्य योजना की एक रूपरेखा भी तैयार की जानी चाहिए। सामाजिक भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए पर्यावरण शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है। इसलिए पर्यावरण शिक्षा को एक पाठ्यक्रम के रूप में समेकित करना और छात्रों को बचपन से ही प्रकृति के बारे में अवगत कराना एक सही विकल्प है।

पर्यावरण शिक्षा अधिगम की एक प्रक्रिया है जो पर्यावरण व इससे जुड़ी चुनौतियों के सम्बन्ध में लोगों की जानकारी और जागरूकता को बढ़ाती हैं, चुनौतियों का सामना करने के लिए आवश्यक कुशलताओं व प्रवीणता को विकसित करती हैं और सुविज्ञ निर्णय तथा ज़िम्मेदारी पूर्ण कदम बढ़ाने के लिए इस ओर प्रवृत्ति, प्रेरणा व प्रतिबद्धता का प्रोत्साहन करती हैं (UNESCO, टाबिलिसी घोषणा, 1978).

पर्यावरण शिक्षा निम्नांकित पर केंद्रित है:

पर्यावरण और पर्यावरणीय चुनौतियों के बारे में जागरूकता और संवेदनशीलतापर्यावरण और पर्यावरणीय चुनौतियों के बारे में समझ और जानकारी

पर्यावरण के सम्बन्ध में चिंता की प्रवृत्ति और पर्यावरण की गुणवत्ता बनाये रखने में सहायतापर्यावरणीय समस्याओं को दूर करने की कुशलता

स्टॉकहोम घोषणा

05-16 जून 1972 - मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की घोषणा.यह दस्तावेज़ 7 घोषणाओं व 26 सिद्धांतों द्वारा बना था जो "संसार के लोगों को मानव पर्यावरण के संरक्षण और बेहतरी के लिए प्रेरित और निर्देशित कर सकें.

बेलग्रेड चार्टर

13-22 अक्टूबर 1975 - बेलग्रेड चार्टर पर्यावरण शिक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला का परिणाम था जो बेलग्रेड, यूगोस्लाविया में आयोजित की गयी थी। बेलग्रेड चार्टर स्टॉकहोम घोषणा पर बनाया गया था और पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम के लक्ष्यों, उद्देश्यों और मार्गदर्शक सिद्धातों को जोड़ता है। यह पर्यावरण शिक्षा के लिए श्रोताओं को परिभाषित करता है, जिसमे आम जनता भी शामिल है।

टाबिलिसि घोषणा

14-26 अक्टूबर 1977 - टाबिलिसि घोषणा में "संसार के पर्यावरण के सुधार व संरक्षण में और साथ ही साथ संसार के समुदायों के सुदृढ़ व संतुलित विकास में पर्यावरणीय शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका को सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया है।"

निर्माण एवं विध्वंस (सी. एंड. डी.) अपशिष्ट प्रसंस्करण संयंत्र (सुविधा केंद्र)

डॉ. योगेंद्र कुमार सक्सेना
वैज्ञानिक 'ख' सरकारी विश्लेषक
क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल

सभी अपशिष्ट प्रबंधन नियमों में अपशिष्ट के पुन: उपयोग और पुनर्चक्रण को बढ़ावा दिया गया है तथा इन सिद्धांतों का महत्व सी. एंड. डी. अपशिष्ट पर भी लागू होता है। निर्माण कार्यों के लिए कुल सामग्री में होने वाली कमी के पूर्वानुमान से सी. एंड. डी. अपशिष्ट का पुनचक्रण/संसाधित किए जाने की गुजाइंश बढ़ गई है। सी. एंड. डी. अपशिष्ट का पुनर्चक्रण महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता कम करने तथा प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभावों जैसे खनन गतिविधियां, जो ऊर्जा गहन और अत्यंत प्रदूषणकारी है, से निजात पाने से सहायता प्राप्त होती है। यह आर्थिक दृष्टि से उपयोगी है। सी. एंड. डी. और अन्य निष्क्रिय अपशिष्ट को ईंटे, फुटपाथ ब्लाकों, निर्माण सामग्रियां जैसे अग्रीगेट आदि को बनाने में उपयोग किया जा सकता है।

परिभाषा : निर्माण और विध्वंस अपशिष्ट का अर्थ किसी नगरीय अवसंरचना के निर्माण, नवीकरण, मरम्मत और विध्वंस के परिणामस्वरूप निकलने वाले अपशिष्ट हैं जिनमें भवन निर्माण सामग्री, मलबा और कचरा शामिल हैं। "अपशिष्ट उत्पन्नकर्ता" का अर्थ किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की संस्था अथवा संस्थान, आवासीय और व्यावसायिक स्थापना है, जिसमें भारतीय रेलवे, हवाईअड्डा पत्तन और बंदरगाह और रक्षा स्थापना शामिल हैं जो किसी नगरीय अवसंरचना के निर्माण, विध्वंस को प्रारंभ करते है जिससे निर्माण और विध्वंस अपशिष्ट निकलता है।

संसाधन सुविधा/पुनचक्रण सुविधा :

- सुविधा केंद्र के प्रचालक राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड अथवा प्रदूषण नियंत्रण समिति से प्राधिकार - पत्र प्राप्त करेगा।
- संसाधन/ पुनर्चक्रण स्थलों को आवसीय समूह, वन क्षेत्र, जल निकायों, स्मारकों, राष्ट्रीय उद्यानों, झीलों तथा महत्वपूर्ण सांस्कृतिक स्थानों, एतिहासिक अथवा धार्मिक जगहों से दूर होना चाहिए।

➢ पांच टन अपशिष्ट प्रतिदिन से अधिक क्षमता के संसाधन/ पुनर्चक्रण सुविधा केंद्र इनके आस-पास के मध्य में कोई विकास कार्य न करने को कायम रखा जाएगा।

सी एंड डी अपशिष्ट की संरचना : कंक्रीट,मिट्टी,इस्पात, लकड़ी और प्लास्टिक, ईंट और गारा ।

निर्माण एवं विध्वंस अपशिष्ट के उपयोग हेतु दिशानिर्देश:

- "आवासीय इकाईयों के निर्माण ओर सरकार की आवास स्कीमों से संबंधित अवसंरचना से संबंधित निर्माण एवं विध्वंस अपशिष्ट के उपयोग हेतु दिशानिर्देश'' *(बीएमटीपीसी 2016)*
- ''सतत आवास हेतु दिशानिर्देश (मार्च, 2014)'' शहरी विकास मंत्रालय द्वारा ''सतत आवास'' से संबंधित राष्ट्रीय मिशन की रिपोर्ट पर आधारित हैं इसके IV भाग में 'निर्माण एवं विध्वंस (सी. एंड. डी.) अपशिष्ट' के पुन: उपयोग और पुनर्चक्रण संबंधी दिशानिर्देशों का वर्णन किया गया है'' (सी.पी. डब्ल्यू. डी.)
- सी.पी.सी.बी. - सी. एंड. डी. अपशिष्ट प्रबंधन कार्यकलापों से उत्पन्न पर्यावरणीय दुष्प्रभावों को कम करने संबंधित मुद्दों का समाधान करने के लिए सी. एंड. डी. अपशिष्ट के पर्यावरणीय प्रबंधन संबंधी दिशानिर्देश। इन मुद्दों पर सी.पी. डब्ल्यू. डी. और बी.एम.टी.पी.सी. द्वारा तैयार किए गए दिशानिर्देशों में विचार विमर्श नहीं किया गया था।

आईएस 383 : 2016 कंक्रीट के मोटे और महीन अग्रीगेट से संबंधित भारतीय मानक:

इस मानक में प्राकृतिक स्रोतों से बने एग्रीगेट, कृश्ड और अक्रश्ड कंक्रीट तथा प्राकृतिक स्रोतों के अतिरिक्त स्रोतों से उत्पन्न एग्रीगेट से विनिमित कंक्रीट की आवश्यकता शामिल है जिन्हें वृहद कंक्रीट कार्यों सहित सामान्य अवसंरचनात्मक प्रयोजनों हेतु कंक्रीट बनाने में उपयोग किया जाता है।

<u>ये विनिर्मित एग्रीगेट दो प्रकार के होते हैं नामत:-</u>

- **पुनर्चाक्रेत एग्रीगेट (आर.ए.) -** इसे सी. एंड. डी. अपशिष्ट से बनाया जिसमें कंक्रीट, ईंट टाईल, पत्थर आदि शामिल हैं।
- **पुनर्चाक्रेत कंक्रीट एग्रीगेट (आर.सी.ए.) -** इसे अपेक्षित संसाधन के बाद कंक्रीट से बनाया जाता है।

बीआईएसआईएस : 383 - यह एक मुख्य मानक है जिससे जनवरी, 2016 में संशोधित किया गया है जिसके तहत प्लेन कंक्रीट के 25 प्रतिशत तक पुनचक्रित एग्रीगेट, एम-25 अथवा

नीचले ग्रेड के पुन निर्मित कंक्रीट के 20 प्रतिशत तथा एम-15 से कम ग्रेड के महीन कंक्रीट के 100 प्रतिशत तक उपयोग अनुमत है।

इंदौर *निर्माण एवं विध्वंस (सी एंड डी) अपशिष्ट प्रसंस्करण संयंत्र (सुविधा केंद्र)*

इंदौर मध्य प्रदेश के प्रदेश का सबसे अधिक आबादी वाला और सबसे बड़ा शहर है। मालवा पठार के दक्षिणी किनारे पर स्थित, समुद्र तल से 550 मीटर की औसत ऊंचाई है। जनगणना अनुमानित 2011 की जनसंख्या 1,994,397 (नगर पालिका) और 2,170,295 (शहरी समूह) की जनसंख्या के साथ, इंदौर मेट्रोपॉलिटन क्षेत्र की जनसंख्या राज्य का सबसे बड़ा राज्य है। शहर को केवल 530 वर्ग किलोमीटर के भूमि क्षेत्र में वितरित किया गया है ।इसे स्वच्छ भारत अभियान में लगातार दो साल (2017 और 2018) में स्थान दिया गया है और यह भारत का सबसे स्वच्छ शहर है।

यह सी. एंड. डी. अपशिष्ट सुविधा केन्द्र इंदौर में लगभग चार एकड़ भूमि पर स्थित है। इसमें 15 लाख टन से अधिक सी. एंड. डी. अपशिष्ट को संसाधित किया जाता है। इस संयंत्र को 100 टन प्रति दिन (टी.पी.डी.) की क्षमता पर प्रचालित किया जा रहा है। साइट पर निर्माण कार्य 20 फरवरी 2018 को पूरा हुआ।

i) कोई भी सी. एंड. डी. अपशिष्ट जनरेटर अपने कचरे को अपने खर्च पर ला सकता है और इसे संग्रह केंद्र में डंप कर सकता है।

ii) सी. एंड. डी. अपशिष्ट जनरेटर एक टोल फ्री नंबर पर कॉल कर सकते हैं: 18002331311, भुगतान के आधार पर उनके सी. एंड. डी. कचरे के संग्रह के लिए।

iii) सी. एंड. डी. अपशिष्ट जनरेटर भुगतान के आधार पर अपने सी. एंड. डी. अपशिष्ट के संग्रहण के लिए मेयर हेल्पलाइन ऐप यानी इंदौर 311 ऐप का भी उपयोग कर सकते हैं।

भुगतान आधार निम्नानुसार है -

- अगर सामग्री को छोटे लोडिंग वाहन में स्थानांतरित किया जाता है, तो इसके शुल्क रु 1200.00 प्रति यात्रा ।

- अगर सामग्री को बड़े लोडिंग वाहन में स्थानांतरित किया जाता है, तो इसके शुल्क रु 2000.00 प्रति यात्रा।

संग्रह और पृथक्करण केंद्र:-

संग्रह और पृथक्करण केंद्र से अपशिष्ट को निर्माण और विध्वंस अपशिष्ट प्रसंस्करण संयंत्र में ले जाया जाता है। संग्रह केंद्र से निर्माण और विध्वंस अपशिष्ट प्रसंस्करण संयंत्र में सी. एंड. डी. के परिवहन के लिए लागत ऑपरेशन और रख रखाव कंपनी द्वारा लगाया जाएगा।

❖ आईटी पार्क स्क्वायर, इंदौर:
आईटी पार्क स्क्वायर में संग्रह केंद्र 4600 वर्ग मीटर के क्षेत्र को कवर करता है।

❖ गांधीनगर केंद्र:
गांधीनगर केंद्र में संग्रह केंद्र 3600 वर्ग मीटर के क्षेत्र को कवर करता है।

❖ कबीटखेदी केंद्र:
कबीटखेदी केंद्र में संग्रह केंद्र 3600 वर्ग मीटर के क्षेत्र को कवर करता है।

❖ अहिरखेदी केंद्र:
संग्रह अधिग्रहण की स्थापना के लिए भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया प्रक्रिया में है

प्रमुख विशेषताएं :-

- इंदौर सी एंड डी पुनचक्रण सुविधा केन्द्र सी. एंड. डी. अपशिष्ट प्रबंधन (2016) नियमों के मुताबिक है
- इसे मिश्रित सी. एंड. डी. अपशिष्ट को संसाधित करने के लिए तैयार किया गया है।
- इससे प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग कम और संरक्षण को बढ़ाया गया है।
- नदी तल से रेत खनन को कम किया जाता है।
- वाशिंग जल को पुन:चक्रित किया जाता है ।
- लैंडफिल स्थानों पर बोझ कम होता है जिससे कीमती शहरी भूमि को बचाया जाता है।
- वायु प्रदूषण को कम किया जाता है।
- यह लगभग 95 प्रतिशत अपशिष्ट का पुनचक्रण/पुन प्राप्ति करने में समर्थ है।
- इस संयंत्र से सी एंड डी अपशिष्ट को सफलतापूर्वक पुनचक्रित एग्रीगेट से संसाधित किया जाता है जिसे ईंट बनाने, सड़क, इंटरलोकिंग टाईलों वाली उत्पाद रेंज, आरएमसी, फूटपाथ ब्लॉक, कंक्रीट ईंट आदि बनाने में उपयोग किया जाता है।

कार्य प्रक्रिया :-

- अपशिष्ट को शुष्क रूप से संसाधित करने के लिए स्थायी क्रशिंग इकाई को संस्थापित किया गया है। इसकी 100 टन सी एंड डी अपशिष्ट प्रति घंटा संसाधित करने की क्षमता है।
- इसमें एक गीली संसाधन प्रणाली जिसे सीडीई सी. एंड. डी. प्रणाली के नाम से जाना जाता है, इसे असंसाधित मिट्टी और प्लास्टर मलवे से मिट्टी निकालने के लिए भी संस्थापित किया जाता है।
- इसकी शुरूआत में मिश्रित सी. एंड. डी. अपशिष्ट की मेनुअल तरीके से पृथक करने की आवश्यकता होती है जिससे अपशिष्ट को पूरी ईंट, बड़े कंक्रीट टुकड़ों और मिश्रित अपशिष्ट में बदला जा सके।

- बड़े आकार के टुकड़ों को यांत्रिक और मेनुअल तरीकों से 200 एमएम से 400 एमएम तक पुन: आकार दिया जाता है।
- पुन: आकार दिए गए टुकड़ों तथा मिश्रित सी. एंड. डी. अपशिष्ट को एक होपर से डाला जाता है जिसमें एक वाइब्रेटिग स्क्रीन फीडर होता है। स्क्रीन फीडर में बैच संसाधन हेतु 60 एमएम का ओपनिंग ग्रिड होता है। इसका 60 एमएस से कम हिस्सा सीधा गीला संसाधन करता है जबकि 60 एमएम से अधिक हिस्सा आकार कम करने के लिए क्रशर का काम करता है।
- इसमें संसाधन के लिए दो प्रकार की भूमि होती है अर्थात सूखी भूमि और आर्द्र भूमि सूखी भूमि में ईंटों, कंक्रीट और मिट्टी को डालकर विभिन्न आकारों में पीसा जाता है और बेचा जाता है। आर्द्र भूमि में ईंटों को विभिन्न 10 से 26.5 आकार के स्टोन डस्ट में बदलने के लिए वाटर प्रेशर का उपयोग किया जाता है (स्टोन डस्ट का उत्पादन लागत प्रभावी होता है), इस महीन रेत को विभिन्न आकार की टाईलों में मोल्ड किया जाता है, इन टाईलों को रंग किया जाता है।

1. **पुनचक्रित उत्पाद :** रबड़ मोल्ड पेवर ब्लाक,स्टील मोल्ड पेवर ब्लाक,कर्बस्टोन्स
2. कंक्रीट टाईले,रिफेब्रिकेटिड अवसरंचनाएं,खोखले ब्लॉक,ठोस ब्लॉक व टॉयलेट ब्लॉक

पुनचक्रण संयंत्र में निम्नलिखित प्रौद्योगिकियों का उपयोग किया गया है :-

संग्रह केंद्र से अपशिष्ट पहले संयंत्र परिसर में डंप किया गया है। कचरे को लोड करने के लिए प्रदान की गई एक ठोस रैंप के माध्यम से कचरा को फ्रंट लोडर की मदद से वाइव्रो स्क्रीन के साथ हॉपर तल की पहली इकाई में लोड किया जाता है।

❖ <u>वाइव्रो स्क्रीन के साथ हूपर</u>

सी. एंड. डी. कचरा इस इकाई में डाला जाता है। यह निर्माण और विध्वंस अपशिष्ट को दो हिस्सों में अलग करता है। 40 मिमी से अधिक कण आकार वाले अपशिष्ट को कंपन स्क्रीन पर रखा जाता है और अलग किया जाता है। जबकि 40 मिमी से कम या उसके बराबर कण आकार के साथ अपशिष्ट स्क्रीन के माध्यम से गुजरता है। इकाई को धूल नियंत्रण के लिए पानी के जेटों के साथ स्थापित किया है।

❖ <u>जा क्रशर</u>

सी. एंड. डी. अपशिष्ट, जिसे वाइव्रो स्क्रीन के साथ हॉपर तल की मदद से अलग किया जाता है, फिर छोटे आकार के कणों में 40 मिमी आकार के साथ टूट जाता है

❖ <u>मुख्य कन्वेयर</u>

मुख्य कन्वेयर में 20 मीटर लंबा है और इसकी क्षमता प्रति घंटे 7 टन है। यह 2 हॉर्स पावर मोटर द्वारा संचालित है।

❖ <u>डबल डेक गीला कंपन स्क्रीन:</u>

विब्रो स्क्रीन के साथ हॉपर तल के अपशिष्ट को डबल डेक गीले कंपन स्क्रीन में लोड किया जाता है। इसमें 12 फीट से 4 फीट के पॉली यूरेथेन पैनलों के क्रमशः आकार 20 मिमी और 10 मिमी के साथ दो स्क्रीन हैं। यह 1500 रोटेशन प्रति मिनट (आरपीएम), 10 हॉर्स पावर मोटर द्वारा संचालित है। यह धूल के उपद्रव को कम करने के लिए पानी छिड़कने के लिए 3 मिमी के साथ 50 मिमी व्यास के तीन पाइप के साथ भी लगाया है।

❖ <u>रेत वर्गीकरण</u>

रेत वर्गीकृत को भंडारण टैंक से पानी की आपूर्ति की आवश्यकता होती है। रेत वर्गीकरण का कार्य फ़ीड स्लरी को दो घटकों में विभाजित करना है जो निम्नानुसार हैं:

- रेत (आकार> 300 माइक्रोन)
- कीचड़

❖ <u>सम्प टैंक</u>

कीचड़ को संप टैंक में डाला जाता है । सिंप टैंक का आकार 12 फीट x 7 फीट x5 फीट है।

❖ <u>स्लज थिकनर टैंक</u>

स्लज थिकनर टैंक में कीचड़ को थिक करने में उपयोग होता हे ।

❖ <u>भंडारण टंकी:</u>

कीचड़ से हटाया गया अतिरिक्त पानी भंडारण टैंक में संग्रहित किया जाता है। यह एक बेलनाकार खोल है जिसमें 10,000 लीटर की क्षमता 2100 मिमी व्यास और 3100 मिमी की ऊंचाई है।

❖ <u>स्लज ड्राइंग बेड्स</u>

कीचड़ ड्राइंग टैंक का कीचड़ , दो कीचड़ सुखाने वाले बेड्स में सुखाने के लिये रखा जाता है। सुखाने के बाद हमें सूखा कीचड़ मिलती है

उत्पादित उत्पाद:-चार प्रमुख उत्पाद इस प्रकार हैं

1) तैयार सतह के साथ पेवर ब्लॉक

पॉवर ब्लॉक पहले रबर पॉवर ब्लॉक मोल्ड में परिष्कृत मिश्रण (जो रंग परिष्करण मिक्सर में बने होते हैं) डालने से बनाते हैं।

2) रफ पेवर ब्लाक

मिश्रण डिजाइन (जो पवर मिक्सर इकाई में बने होते हैं) के अनुसार 20 मिमी अधिकतम आकार कुल, रेत, सीमेंट और पानी के सूखे मिश्रण को डालने से बनाते हैं।

3) आयताकार पेवर ईंटें

आयताकार पेवर ईंटों के मामले में आकार आयताकार होता है।

4) चिनाई ईंटें

चिनाई ईंटें 9 इंच x 4 इंच x 3 इंच आकार के हैं। वे चिनाई ईंट मिक्सर इकाई में मिश्रण डिजाइन के अनुसार रेत, अंतिम कीचड़, सीमेंट और पानी को मिलाकर बनाए जाते हैं।

उत्पाद विनिर्माण उपकरण:-

निर्माण और विध्वंस अपशिष्ट प्रसंस्करण संयंत्र में उत्पाद के निर्माण के लिए कई उपकरणों का उपयोग किया जाता है। वे निम्नानुसार हैं:

- ✓ चिनाई ईंट मिश्रण इकाई:
  यह मिश्रण डिजाइन के अनुसार कीचड़, रेत, सीमेंट और पानी को मिश्रण करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह 2 हॉर्स पावर मोटर द्वारा संचालित है
- ✓ ईंट विनिर्माण इकाई:
  इसका उपयोग कीचड़, रेत, सीमेंट और पानी के मिश्रण से ईंटों को कास्ट करने के लिए किया जाता है। यह एक हाइड्रोलिक प्रेस मशीन है जो प्रति घंटे 300 ईंटों का उत्पादन कर सकती है और इसकी उत्पादन क्षमता 2400 है । यह एक 12 हॉर्स पावर मशीन है।
- ✓ रंग मिक्सर:
  रंग मिक्सर, रंग रंगद्रव्य, सीमेंट और पानी मिश्रण करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह 1 हॉर्स पावर मोटर द्वारा संचालित है।
- ✓ पेवर मिक्सर इकाई:
  इसका उपयोग पॉवर ब्लॉक के निर्माण के लिए 20 मीटर अधिकतम आकार कुल, रेत, सीमेंट और पानी को मिश्रण करने के लिए किया जाता है। यह 2 हॉर्स पावर मोटर द्वारा संचालित है
- ✓ पेवर विनिर्माण इकाई:
  इसका उपयोग 20 मिमी अधिकतम आकार के योग, रेत, सीमेंट और पानी के मिश्रण से पॉवर ब्लॉक को कास्ट करने के लिए किया जाता है। यह एक हाइड्रोलिक प्रेस मशीन है जो प्रति घंटे 300 ईंटों का उत्पादन कर सकती है और इसमें 8 घंटे की प्रति शिफ्ट 2400 ईंटों के उत्पादन की क्षमता है। यह एक 7.5 हॉर्स पावर मशीन है।

- ✓ वाइब्रेटरी टेबल और पेवर मोल्ड:
  स्पंदनात्मक तालिकाओं को 2 हॉर्स पावर मोटर की मदद से कंपन प्रदान की जाती है।

इस संयंत्र से सी एंड डी अपशिष्ट को सफलतापूर्वक पुनचक्रित अग्रीगेट से संसाधित किया जाता है जिसे ईंट बनाने, सड़क, इन्टरलॉकिंग टाईलों वाली उत्पाद रेंज, आरएमसी, फूटपाथ ब्लॉक, कंक्रीट ईंट आदि बनाने में उपयोग किया जाता है।

पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन (ईआईए) - एक परिचय

डॉ. दीपक गौतम, अनुसंधान अधिकारी
पर्यावरण,वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, दिल्ली

पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (ईआईए)

पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (ईआईए) योजना तैयार करने का एक उपकरण है जिसका उद्देश्य पर्यावरण संबंधी समस्याओं को योजना की आरंभिक अवस्था से ही विकास की प्रक्रिया के साथ एकीकृत करना है। भारत में इसका उपयोग सर्वप्रथम वर्ष 1978 में नदी घाटी परियोजनाओं के साथ किया गया था और बाद में इसे सार्वजनिक निवेश बोर्ड (पीआईबी) स्वीकृति की अपेक्षा वाली सार्वजनिक क्षेत्र की बड़ी परियोजनाओं तक विस्तारित किया गया। इन पद्धतियों को पहली बार ईआईए अधिसूचना, 1994 में औपचारिक रूप से संहिताबद्ध किया गया था, जो दिनांक 27 जनवरी,1994 से प्रभावी हुआ था। उपर्युक्त अिधसूचना के तहत, उसमें सूचीबद्ध 37 श्रेणियों की परियोजनाओं/ प्रक्रियाओं के लिए पर्यावरणीय स्वीकृति की अपेक्षा को अनिवार्य बनाया गया। विभिन्न क्षेत्रों में पर्यावरणीय स्वीकृति की अपेक्षा रखने वाली परियोजनाओं के लिए निवेश के मानदंड को आधार बनाया गया। मंत्रालय द्वारा मछुआरा समुदाय सहित विभिन्न पणधारकों के साथ कई बार विचार-विमर्श करने के उपरांत सीआरजेड अधिसूचना, 1991 का अधिक्रमण करते हुए तटीय विनियमन क्षेत्र (सीआरजेड) अधिसूचना, 2011 जारी की गई। वर्ष 2011 की अधिसूचना का उद्देश्य तटीय क्षेत्रों में रहने वाले मछुआरा समुदायों तथा अन्य स्थानीय समुदायों के लिए आजीविका की सुरक्षा सुनिश्चित करना, तटीय क्षेत्रों को संरक्षण/सुरक्षा प्रदान करना तथा सतत वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर विकास को बढ़ावा देना है।

ईआईए अधिसूचना, 2006 और सीआरजेड अधिसूचना, 2011 को समय-समय पर संशोधित किया गया है जिसका उद्देश्य स्वीकृति की प्रक्रिया को और अधिक सुव्यवस्थित करना है। ये संशोधन सतत विकास के लक्ष्य को हासिल करने हेतु पर्यावरणीय समस्याओं को

विकास की प्रक्रिया से एकीकृत करने की आवश्यकता से उत्पन्न नई समस्याओं का समाधान करने के लिए लाए गए हैं। विकास परियोजना (ओं) को पर्यावरणीय स्वीकृति (ईसी) प्रदान करते समय आवश्यक शर्तें, पर्यावरणीय सुरक्षा के मानदंड और उपाय निर्धारित किए जाते हैं जिन्हें परियोजना के निर्माण और प्रचालन के दौरान प्रभावकारी ढंग से कार्यान्वित करना अपेक्षित होता है। सुरक्षा उपायों का उद्देश्य अन्य बातों के साथ-साथ (i) वायु गुणवत्ता, (ii) जल गुणवत्ता, (iii) भूमि अवक्रमण, (iv) जैव-विविधता और (v) वन्यजीव पर्यावास पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को कम करना है। इसके अलावा, परियोजना में वर्षा जल संचय, जल संरक्षण, हरित क्षेत्र और वृक्षारोपण, वन्यजीव संरक्षण योजना आदि जैसे उपायों को भी कार्यान्वित करना अपेक्षित है।

नई परियोजनाओं के लिए पूर्व पर्यावरणीय स्वीकृति (ईसी) की प्रक्रिया के विभिन्न चरण:-

जैसा कि अधिसूचना में निर्धारित किया गया है, नई परियोजनाओं के लिए पर्यावरणीय स्वीकृति प्रदान करने की प्रक्रिया में अधिकतम चार चरण होते हैं। किसी विशेष परियोजना के मामले में ये सभी चरण लागू नहीं भी हो सकते हैं। ये चार चरण क्रमवार नीचे दिए गए हैं:-

- चरण (1) जांच (केवल श्रेणी 'ख' की परियोजनाओं और कार्यकलापों के लिए)
- चरण (2) विषय-क्षेत्र का निर्धारण
- चरण (3) जन-परामर्श
- चरण (4) मूल्यांकन

चरण (1) - जांच :

श्रेणी 'ख' की परियोजनाओं और कार्यकलापों के मामले में, इस चरण में प्रपत्र-1 में पूर्व पर्यावरणीय स्वीकृति की मांग हेतु किए गए आवेदन की परियोजना की प्रकृति और उसके स्थान की विशिष्टता के आधार पर संबंधित राज्य स्तरीय विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति (एसईएसी) द्वारा जांच करना शामिल है, जिसका उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि किसी परियोजना या कार्यकलाप को पर्यावरणीय स्वीकृति प्रदान करने से पहले उसके मूल्यांकन हेतु पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (ईआईए) तैयार करने के लिए और अधिक पर्यावरणीय अध्ययन कराना अपेक्षित है अथवा नहीं। जिन परियोजनाओं के लिए पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन रिपोर्ट अपेक्षित है, श्रेणी 'बी 1' और शेष परियोजनाओं को श्रेणी 'बी 2' पारिभाषित किया जाएगा और उनके लिए पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन रिपोर्ट अपेक्षित नहीं होगी। मद संख्या 8(ख) को छोड़कर

बी 1 अथवा बी 2 में परियोजनाओं के श्रेणीकरण के लिए पर्यावरण एवं वन मंत्रालय समय-समय पर उचित दिशानिर्देश जारी करेगा।

चरण (2) विषय क्षेत्र निर्धारण (स्कोपिंग) :

''स्कोपिंग'': वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति श्रेणी 'क' परियोजनाओं अथवा कार्यकलापों के मामले में और राज्य स्तरीय विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति द्वारा मौजूदा परियोजनाओं अथवा कार्यकलापों के मिश्रित परिणाम में विस्तारण और/अथवा आधुनिकीकरण और/अथवा परिवर्तन सहित श्रेणी 'ख' परियोजनाओं अथवा कार्यकलापों के मामले में उस परियोजना अथवा कार्यकलाप, जिसके लिए पूर्व पर्यावरणीय स्वीकृति मांगी गई है, के संबंध में पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन (ईआईए) रिपोर्ट की तैयारी के लिए सभी संगत पर्यावरणीय सरोकारों का निराकरण करते हुए विस्तृत और व्यापक विचारार्थ विषय (टीओआर) निर्धारित करती है। संबंधित विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति अथवा राज्य स्तरीय विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति आवेदक द्वारा प्रस्तावित विचारार्थ विषयों सहित निर्धारित आवेदन प्रपत्र 1/प्रपत्र 1 क में प्रस्तुत की गई सूचना के आधार पर विचारार्थ विषय निर्धारित करेगी।

चरण (3) - जन परामर्श

''जन परामर्श'' से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा स्थानीय प्रभावित लोग और अन्य, जिनकी परियोजना/कार्यकलाप के पर्यावरणीय प्रभावों में व्यावहारिक हिस्सेदारी है, के मामलों को उपयुक्त रूप से परियोजना अथवा कार्यकलाप डिजाइन में सभी महत्वपूर्ण सरोकारों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाता है। सभी श्रेणी 'क' और श्रेणी 'ख 1' परियोजनाओं में कुछ श्रेणियों को छोड़कर जन परामर्श किया जाएगा।

जन-परामर्श में निम्नलिखित को शामिल करते हुए सामान्यत: दो घटक होंगे:-

(क) स्थानीय प्रभावित व्यक्तियों के सरोकारों को निर्धारित करने के लिए परिशिष्ट -IV में निर्धारित रीति से जिला-वार स्थल विशिष्ट पर अथवा इसके सन्निकट स्थान पर जन सुनवाई की जाएगी;

(ख) परियोजना अथवा कार्यकलाप के पर्यावरणीय पहुलओं में व्यावहारिक हिस्सेदारी वाले अन्य संबंधित व्यक्तियों से लिखित में प्रत्युत्तर प्राप्त करना।

जन-परामर्श के पूरा हो जाने के बाद आवेदक इस प्रक्रिया के दौरान व्यक्त किए गए सभी व्यावहारिक पर्यावरणीय सरोकारों का निराकरण करेगा और प्रारूप ईआईए और ईएमपी में उपयुक्त संशोधन करेगा। इस प्रकार तैयार की गई अंतिम ईआईए रिपोर्ट, आवेदक द्वारा मूल्यांकन हेतु संबंधित विनियामक प्राधिकरण को प्रस्तुत की जाएगी। आवेदक, जन परामर्श के दौरान व्यक्त किए गए सभी सरोकारों का निराकरण करते हुए वैकल्पिक रूप से प्रारूप ईआईए और ईएमपी के लिए अनुपूरक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

IV चरण (4)- मूल्यांकन

(i) मूल्यांकन से तात्पर्य पर्यावरणीय स्वीकृति प्रदान करने के लिए संबंधित विनियामक प्राधिकरण को आवेदक द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन पत्र और अन्य दस्तावेज जैसे अंतिम ईआईए रिपोर्ट, जन सुनवाई की कार्यवाहियों सहित जन परामर्श के परिणाम की विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति अथवा राज्य स्तरीय विशेषज्ञ समिति द्वारा विस्तृत जांच किया जाना है। यह मूल्यांकन संबंधित विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति अथवा राज्य स्तरीय मूल्यांकन समिति द्वारा पारदर्शी रीति से इस पद्धति से किया जाएगा जिसमें आवेदकों को व्यक्तिगत रूप से अथवा प्राधिकृत प्रतिनिधित्व के माध्यम से आवश्यक स्पष्टीकरण देने के लिए आमंत्रित किया जाएगा। इस कार्यवाही के निष्कर्ष में विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति या संबंधित राज्य स्तरीय मूल्यांकन समिति संबंधित नियामक प्राधिकारी को या तो निर्धारित शर्तों पर पूर्व पर्यावरणीय मंजूरी प्रदान करने के लिए या पूर्व पर्यावरणीय मंजूरी के आवेदन को अस्वीकार करने के लिए इसके कारणों सहित स्पष्ट सिफारिशें करेगी।

(ii) उन सभी परियोजनाओं या कार्यकलापों, जिन्हें जन-परामर्श की या पर्यावरणीय प्रभाव आकलन रिपोर्ट प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है का मूल्यांकन यथा लागू निर्धारित

आवेदन प्रपत्र-I और प्रपत्र-1 क तथा किसी अन्य प्रासंगिक और मान्य उपलब्ध सूचना के आधार पर और स्थल का दौरा, जहां भी यह विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति या संबंधित राज्य स्तरीय विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति द्वारा आवश्यक समझा जाए, किया जाएगा।

(iii) किसी आवेदन का मूल्यांकन, विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति या संबंधित राज्य स्तरीय विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति द्वारा अंतिम पर्यावरणीय प्रभाव आकलन रिपोर्ट और अन्य दस्तावेज़ों या प्रपत्र-I और प्रपत्र-I क की प्राप्ति जहां जन-परामर्श आवश्यक नहीं है, के साठ दिनों के भीतर पूरा किया जाएगा और विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति या राज्य स्तरीय विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति की सिफारिशों को अगले पंद्रह दिनों के भीतर अंतिम निर्णय के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखा जाएगा। मूल्यांकन के लिए निर्धारित प्रक्रिया परिशिष्ट -V में दी गई है;

विकास परियोजनाओं के लिए पर्यावरणीय मंजूरी

पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन अधिसूचना, 2006 के प्रावधानों के अनुसार, उद्योग, तापीय, नदी घाटी और जल- विद्युत परियोजनाएं, कोयला खनन, गैर-कोयला खनन, अवसंरचना, निर्माण एवं तटीय विनियमन क्षेत्र और परमाणु, रक्षा और इनसे संबंधित परियोजनाओं के क्षेत्रों से श्रेणी 'क' की परियोजनाओं के मूल्याकन हेतु वर्ष के दौरान विभिन्न क्षेत्रीय विशेषज्ञ मूल्यांकन समितियों की कई बैठकों का आयोजन किया गया। जहां भी आवश्यक हो, मूल्यांकन प्रक्रिया के एक भाग के रूप में विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति ने जमीनी स्तर की वास्तविकताएं और आस-पास के क्षेत्र में रहने वाले लोगों की प्रतिक्रिया के बारे में प्रथम जानकारी प्राप्त करने के लिए परियोजना स्थलों का दौरा भी किया।

राज्य पर्यावरण प्रभाव आकलन प्राधिकरणों का गठन (एसईआईएए)

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने मंजूरी देने में तेज़ी लाने के लिए संबंधित राज्य पर्यावरणीय प्रभाव आकलन प्राधिकरणों (एसईआईएए) को श्रेणी 'ख' की परियोजनाओं के संबंध में पर्यावरणीय मंजूरी देने के लिए शक्तियों को विकेंद्रीकृत किया है। एसईआईएए/राज्य विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति (एसईएएस) का गठन मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों के परामर्श से किया गया है।

पर्यावरण मंजूरी देने की शर्तों की पश्च परियोजना निगरानी

पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन अधिसूचना, 2006 के अंतर्गत मंजूरी, श्रेणी 'क' पारियोजनाओं के लिए राज्य स्तरीय प्रभाव आकलन प्राधिकरणों (एसईआईएएएस)/ यूटीआईएएएस द्वारा प्रदान की जाती है। इसी तरह, तटी विनियमन क्षेत्र अधसूचना, 2011 के अंतर्गत मंजूरी संबंधी तटीय क्षेत्र प्रबंधन प्राधिकरण द्वारा परियोजना की सिफारिश किए जाने के बाद, जैसा भी मामला हो, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय या संबंधित एसईआईएए द्वारा भी प्रदान की जाती है। इन दोनों ही अधिसूचनाओं के अंतर्गत पर्यावरणीय स्वीकृतियां प्रदान करते समय विभिन्न शर्तें और पर्यावरणीय सुरक्षोपाय विनिर्दिष्ट किए जाते हैं जिनका परियोजना चक्र के विभिन्न चरणों के दौरान परियोजना प्रस्तावक द्वारा क्रियान्वयन किया जाना अपेक्षित होता है।

परियोजनोत्तर स्वीकृति निगरानी के उद्देश्य हैं :

(i) सुनिश्चित करना कि पर्यावरणीय स्वीकृति पत्र में विनिर्दिष्ट शर्तों के अनुसरण में परियोजना चक्र के दौरान पर्यावरणीय सुरक्षोपायों को समाविष्ट करने के लिए कार्रवाइयां कर ली गई हैं; और

(ii) संबंधित परियोजनाओं के प्रचालन के दौरान पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को रोकने के लिए समुचित सुधारात्मक उपाय करना।

ईआईए अधिसूचना, 2006 और तटीय विनियमन ज़ोन (सीआरज़ेड) अधिसूचना, 2011 के अंतर्गत जारी पर्यावरणीय स्वीकृति पत्र में पर्यावरणीय स्वीकृति प्रदान करते समय विनिर्दिष्ट शर्तों के क्रियान्वयन की निगरानी पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के चण्डीगढ़, लखनऊ, भोपाल, भुवनेश्वर, बैंगलुरू, रांची, नागपुर, चैन्ने, देहरादून और शिलांग स्थित दस क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा अपने-अपने संबंधित अधिकार-क्षेत्रों के अनुसार की जाती है। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के क्षेत्रीय कार्यालयों के अलावा भी राष्ट्रीय तटीय ज़ोन प्रबंधन प्राधिकरण (एनसीज़ेडएमए) और राज्य तटीय ज़ोन प्रबंधन

प्राधिकरणों (एससीज़ेडएमए) द्वारा सीआरज़ेड अधिसूचनाओं के उल्लंघनों की निगरानी की जाती है।

निगरानी रिपोर्ट की जांच मंत्रालय में की जाती है और उसके आधार पर पर्यावरणीय स्वीकृति शर्तों का अनुपालन न करने पर पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम,1986 के तहत समुचित कार्रवाई करने पर विचार किया जाता है।

क्षेत्र दौरे के दौरान किए गए अवलोकनों के आधार पर ईसी शर्तों का प्रभावी अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए निगरानी की गई परियोजनाओं के संबंध में परियोजना प्रस्तावकों के साथ आवश्यक अनुवर्ती कार्रवाई की जाती है। इस मंत्रालय का निगरानी प्रकोष्ठ क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा प्रस्तुत की गई निगरानी रिपोर्टों की जांच करता है। बड़े स्तर पर अनुपालन न होने के मामले में कारण बताओ नोटिस जारी करने सहित प्रभावी अनुपालन किए जाने के लिए आगे अनुवर्ती कार्रवाई की जाती है और उसके बाद मामला-दर-मामला आधार पर पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अंतर्गत निदेश जारी किए जाते हैं।

भारतीय गुणवत्ता परिषद (क्यूसीआई)/राष्ट्रीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रत्यायन बोर्ड (एनएबीईटी) के साथ ईआईए परामर्शियों का प्रत्यायन

परियोजना प्रस्तावकों द्वारा अपने-अपने परामर्शियों के सहयोग से तैयार की गई ईआईए/ईएमपी रिपोर्टों के आधार पर ईआईए अधिसूचना, 2006 के उपबंधों के अनुसार विकास संबंधी परियोजनाओं का पर्यावरणीय मूल्यांकन किया जाता है। उपयुक्त निर्णय लेने के लिए बेहतर गुणवत्ता ईआईए रिपोर्टों की पूर्वापेक्षा होती है। अब तक केवल क्यूसीआई/एनएबीईटी के साथ प्रत्यायित परामर्शियों को ही ईआईए/ईएमपी रिपोर्टें तैयार करने और मामलों को ईएसी/एसईएसी के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति है।

जैव-चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन - वर्तमान परिदृश्य

डॉ. अनूप चतुर्वेदी, वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक, भोपाल

आज जैव-चिकित्सा अपशिष्ट देश और दुनिया के लिये एक बहुत बड़ा पर्यावरणीय संकट बनता जा रहा है। हर शहर में निजी व सरकारी अस्पताल होते हैं, जिनसे प्रतिदिन सैकड़ों टन चिकित्सकीय कचरा उत्पन्न होता है और यदि पूरे देश में इनकी संख्या की बात करें तो देश भर के अस्पतालों से निकलने वाला कचरा कई टनों में होता है। आज अस्पतालों की संख्या भी बढ़ रही है और उसी हिसाब से उन बीमार व्यक्तियों के इलाज में प्रयुक्त होने वाले सामानों की संख्या भी बढ़ रही है, जिससे जैव-चिकत्सा अपशिष्ठ की मात्रा भी बड़ रही है।

क्या होता है जैव-चिकित्सा अपशिष्ट?

जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ के मुख्य स्रोत तो अस्पताल, नर्सिंग होम, डिस्पेंसरी तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र होते हैं। इनके अलावा विभिन्न मेडिकल कॉलेज, रिसर्च सेंटर, पराचिकित्सक सेवाएं, ब्लड बैंक, मुर्दाघर, शव-परीक्षा केंद्र, पशु चिकित्सा कॉलेज, पशु रिसर्च सेंटर, स्वास्थ्य संबंधी उत्पादन केंद्र तथा विभिन्न बायोमेडिकल शैक्षिक संस्थान भी बड़ी मात्रा में बायोमेडिकल कचरा पैदा करते हैं।

इस कचरे में काँच व प्लास्टिक की ग्लूकोज की बोतलें, इंजेक्शन और सिरिंज, दवाओं की खाली बोतलें व उपयोग किए गए आईवी सेट, दस्ताने और अन्य सामग्री होती हैं। उपरोक्त के अलावा सामान्य चिकित्सक, दंत चिकित्सा क्लीनिकों, पशु घरों, कसाईघरों, रक्तदान शिविरों, एक्यूपंक्चर विशेषज्ञों, मनोरोग क्लीनिकों, अंत्येष्टि सेवाओं, टीकाकरण केंद्रों तथा विकलांगता शैक्षिक संस्थानों से भी थोड़ा-बहुत जैव-चिकत्सा अपशिष्ठ निकलता है।

यह देखा गया है कि कई बार अस्पतालों के कुछ स्टाफ इस जैविक कचरे को कबाड़ियों को बेच देते हैं। कई प्राइवेट अस्पताल तो इस कचरे के निपटारन या निस्तारण शुल्क से बचने के लिये इसे आस-पास की जगहों पर डलवा देते हैं और वहीं से कचरा चुनने वाले इसे इक्ट्ठा करके कबाड़ियों को बेच देते हैं। इस कबाड़ में कुछ ऐसी भी सामाग्री होती हैं जैसे कि सिरिंज, गोलियों की शीशियां, हाइपोडर्मिक सूइयाँ व प्लास्टिक ड्रिप आदि जोकि थोड़ा बहुत साफ-सफाई करके निजी मेडिकल क्लीनिकों को दोबारा बेचने लायक हो सकती हैं। इस तरह से कबाड़ चुनने वाले भी अपनी कमाई कर लेते हैं और इसके लिये वे वार्ड क्लीनर को भी कुछ हिस्सा दे देते हैं।

क्या हैं जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ प्रबंधन नियम ?

जैव-चिकत्सा अपशिष्ठ का सही ढंग से निपटान हेतु केंद्र सरकार ने पर्यावरण संरक्षण के लिये जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ (प्रबंधन व संचालन) नियम, 1998 बनाया है जिसमे बाद मे कई संशोधन हुए तथा वर्तमान मे जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ प्रबंधन नियम 2018 प्रभावी है। केंद्र सरकार ने नए जैव-चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन नियम अधिसूचित कर दिए हैं। यह नए जैव-चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन नियम देश अपशिष्ट प्रबंधन के पुराने तरीकों में बदलाव लाएंगे। नई व्यवस्था के तहत इसके प्रभाव क्षेत्र को बढ़ा दिया गया है और इसमें प्रयोगशाला अपशिष्ट, रक्त के नमूनों आदि का पूर्व-उपचार भी शामिल किया गया है। यह नियम सटीक नियंत्रण के लिए बार कोड प्रणाली को अधिदेशित करता है। इसने वर्गीकरण एवं प्राधिकरण को सरल बना दिया है।

प्रमुख विशेषताएँ:-

-नियमों के दायरे को टीकाकरण शिविरों, रक्तदान शिविरों, शल्य चिकित्सा शिविरों या अन्य किसी स्वास्थ्य गतिविधि तक बढ़ा दिया गया है

-दो वर्षों के भीतर क्लोरीनयुक्त प्लास्टिक के थैलों, दस्तानों एवं रक्त के थैलों को चरणबद्ध तरीके से समाप्त कर दिया जाएगा

-सभी स्वास्थ्य कर्मियों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाएगा एवं नियमित रूप से सभी स्वास्थ्य कर्मियों का टीकाकरण किया जाएगा

-निपटान के लिए जैव-चिकित्सा अपशिष्ट युक्त थैलों या कंटेनरों के लिए बार कोड प्रणाली स्थापित की जाएगी
-बड़ी दुर्घटनाओं की रिपोर्ट की जाएगी
-जैव-चिकित्सा अपशिष्ट को अब 10 के बजाय 4 वर्गों में वर्गीकृत किया जाएगा

नए नियमों के तहत वातावरण में प्रदूषक तत्वों के उत्सर्जन से संबंधित नियमों को और कठोर बना दिया गया है इसके अनुसार निजी व सरकारी अस्पतालों को इस तरह के चिकित्सीय जैविक कचरे को खुले में या सड़कों पर नहीं फेंकना चाहिए, ना ही इस कचरे को म्यूनीसिपल कचरे में मिलाना चाहिए। साथ ही स्थानीय कूड़ाघरों में भी नहीं डालना चाहिए, क्योंकि इस कचरे में फेंकी जानी वाली सेलाइन बोतलें और सिरिंज कबाड़ियों के हाथों से होती हुई अवैध पैकिंग का काम करने वाले लोगों तक पहुँच जाती हैं, जहाँ इन्हें साफ कर नई पैकिंग में बाजार में बेच दिया जाता है।

जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ प्रबंधन नियम के अनुसार, इस जैविक कचरे को खुले में डालने पर अस्पतालों के खिलाफ जुर्माने व सजा का भी प्रावधान है। नियम-कानून तो है, लेकिन जरूरत है, इसको कड़ाई से लागू करने की। नियम के अनुसार, अस्पतालों में नीले, पीले, व लाल रंग के बैग रखने चाहिए।

क्या हैं ये लाल, पीले व नीले बैग ?

दरअसल, विभिन्न प्रकार के जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ का अलग-अलग उपचार होता है अतः इन्हे अलग-अलग रंग के बैग मे एकत्र किया जाता है, ताकि इनके निपटान में आसानी हो। लाल बैग में सिर्फ सूखा कचरा आता है जैसे कि रुई, गंदी पट्टी, प्लास्टर आदि। पीले बैग में गीला कचरा, बायोप्सी, मानव अंगों का कचरा आदि डालना चाहिए क्योंकि इन्हे उच्च तापमान पर भस्म किया जाता है। इसी तरह से नीले बैग में सूइयाँ, ब्लेड, काँच की बोतलें, इंजेक्शन आदि रखे जाते हैं जिन्हे हाइपो क्लोराइड कि मदद से जीवाणु मुक्त किया जाता है।

इन सबके अलावा, अस्पतालों में एक रजिस्टर भी होता है, जिसमें जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ के बारे मे रेकॉर्ड रखा जाता है। अस्पतालों से निकलने वाले इस कूड़े को बायोमेडिकल वेस्ट ट्रीटमेंट प्लांट में भेजा जाता है। आटोब्लेड सलेक्टर से कूड़े में से निकली सूइयों को काटा जाता है,जिससे कि इनको दोबारा प्रयोग में ना लाया जा सके। इसके बाद कूड़े में से काँच, लोहा,प्लास्टिक जैसी चीजों को अलग किया जाता है। शेष बचे हुए कूड़े-कचरे को

प्लांट में इंसीनरेटर के माध्यम से भस्म कर दिया जाता है। ऐसा करने से बायोमेडिकल कचरे के दुरुपयोग और इससे पर्यावरण को होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है।

जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ वर्तमान परिदृश्य

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा 2016 की जैव-चिकत्सा अपशिष्ठ की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार देश में करीब 1,87,160 स्वास्थ सेवा केंद्र है जिससे 517 टन बायोमेडिकल कचरा पैदा होता है, जिसमें से 510 टन किलोग्राम कचरा ही एकत्र किया जाता है। इस आंकड़े से इस बात की भी पुष्टि होती है कि रोजाना 07 टन किलोग्राम कचरा नष्ट नहीं किया जाता और वह अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण को हानि पाहुचाते है। आंकड़े यह भी बताते हैं कि 12034 मेडिकल इकाइयों द्वारा नियमों का उल्लंघन किया गया है जिसमें सबसे अधिक कर्नाटक (1925) व गुजरात (1806) मे है। देश मे कुल 199 कॉमन जैव-चिकत्सा अपशिष्ठ निपटारा प्लांट मौजूद हैं। इसमे कचरे को 950 से 1,150 डिग्री सेल्सियस के निर्धारित तापमान पर भस्म किया जाता है।

जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ का उचित निपटान एवं प्रबंधन कैसे?

जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ में तरह-तरह के अपशिष्ट होते हैं, इस आधार पर नष्ट करने के तरीके भी अलग-अलग होते हैं।

सेन्ट्रल पॉल्यूशन कंट्रोल बोर्ड की गाइडलाइन में भी स्पष्ट निर्देश है कि जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ रोज नष्ट कर दिया जाना चाहिए। इसके लिये सिरिंज, सूइयाँ एवं बोतलों आदि को उत्पन्न होने वाले स्थल पर ही डिस्पोज कर देना चाहिए यानि उपयोग के तुरंत बाद नष्ट करके अलग-अलग थैलियों में डालकर जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ निपटारा प्लांट तक पहूँचाना चाहिए। इसके विपरीत हकीकत यह है कि अस्पताल के वार्डों व ऑपरेशन थिएटरों के कचरे को खुली ट्रॉलियों के माध्यम से ले जाया जाता है।

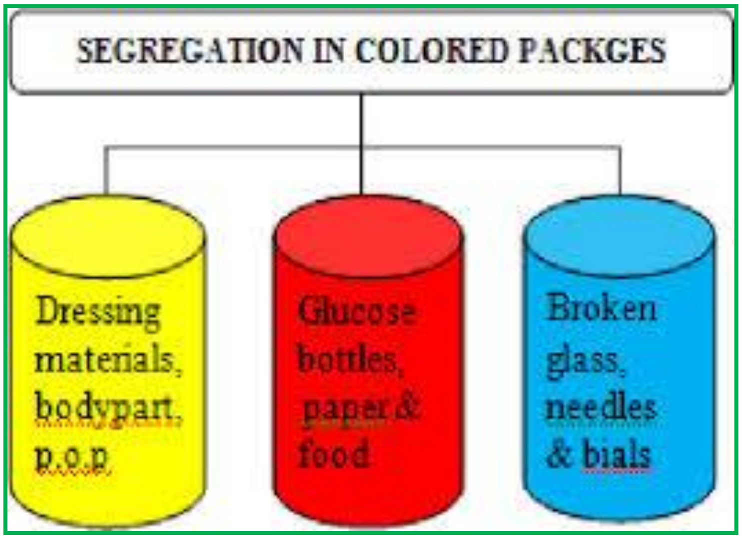

जब प्लास्टिक अपशिष्ट का निपटान करना हो तो प्लास्टिक अपशिष्ट को नष्ट करने से पहले कटर से काटकर एक प्रतिशत ब्लीचिंग पाउडर सोल्यूशन में एक घंटे तक रखा जाता है ताकि वह रोगाणुओं से मुक्त

हो जाए परंतु यह देखा गया है कि यह प्लास्टिक स्थानीय बाज़ार मे सुगमता से विक्रय हेतु उपलब्ध होता है जो कि जैव-चिकत्सा अपशिष्ठ प्रबंधन नियमों के विरुद्ध है।

यध्यपी केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा लगातार उक्त जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ के प्रबंधन हेतु जागरूकता की जा रही है परिणामस्वरूप शहरी स्तर पर जहाँ यह जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ अधिक मात्रा मे उत्पन्न होता है वहाँ इसके सकारात्मक प्रभाव देखने को मिले है।

हमें और आपको क्या करना चाहिए?

जैव-चिकत्सा अपशिष्ठ के उचित निपटान एवं प्रबंधन में हमारी और आपकी भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके लिये हम निम्न बातों को अपना कर इस जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ से खुद को और अपने पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचा सकते हैं:

1. कचरे को बंद वाहनों में ले जाना चाहिए। जैव-चिकत्सा अपशिष्ठ को अलग-अलग करके निर्धारित प्रक्रिया के तहत उसका निस्तारण करना चाहिए।

2. जैव-चिकत्सा अपशिष्ठ को उसके उपचार के आधार पर निर्धरित रंग के बैग मे ही एकत्र करना चाहिए।

3. जैव-चिकित्सा अपशिष्ठ और इंडस्ट्रियल वेस्ट को शहरी कचरे में नहीं मिलाना चाहिए।

4. अस्पताल मे प्रत्येक वर्ड मेन कचरा पात्र रखे होने चाहिए, तथा वहाँ से कचरा नियमित रूप से उठाने की व्यवस्था हो।

5. ठोस कचरा प्रबंधन की जानकारी के लिये जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

6. लैंडफिल साइट पर बायोमेडिकल कचरा न डालें। यदि लैंडफिल पर कचरा डालना भी हो तो कचरा डालते ही तत्काल 10 मिलीमीटर की मिट्टी की परत बिछा देनी चाहिए।

-

राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम - एक परिचय

श्रीमती साक्षी बत्रा, वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक
वायु गुणवत्ता प्रबंधन प्रभाग, दिल्ली

वायु प्रदूषण हमेशा के ही जन स्वास्थ के लिए चिंता का विषय रहा है मुख्य रूप से शहरी क्षेत्र में, इसे नियंत्रण के लिए लगभग सभी क्षेत्रों में सुधार किए गए है चाहे वह औध्योगिक क्षेत्र हो, शहरी क्षेत्र हो या कोई अन्य प्रदूषण का स्त्रोत। शहरों में सबसे ज्यादा प्रदूषण वाहनों से होता है इसे नियंत्रित करने के लिए अनेक कदम उठाए गए है जैसे ईंधन में सल्फर व बेजीन की मात्रा कम करना, उत्सर्जन के नए मानक बनाना, सीएनजी का प्रयोग,सार्वजनिक वाहन व्यवस्था आदि।

औध्योगिक क्षेत्र में भी वायु प्रदूषण कम करने के लिए अनेक उपाय अपनाए है वहाँ भी उत्सर्जन के नियम और कड़े किए गए है साथ ही सब शहरी क्षेत्राओं में कचरे व पराली के जलाने पर प्रतिबंध लगाया गया है ताकि प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सके। यद्धपी सरकार द्वारा अनेक कदम उठाए है फिर भी अगर विगत वर्षों के पीएम 10 व पीएम 2.5 के डाटा देखें तो ज्ञात होता है कि कई शहर अभी भी पीएम 10 के राष्ट्रीय औसत से अधिक है तथा कई शहर अभी भी स्वास्थ्य के नजर से यह ठीक नही है ।

बड़े शहरों में यह समस्या और भी विकराल होती जा रही है। क्योंकि यहॉ पर वायु प्रदूषण के अनेक स्त्रोत है जैसे उद्योग, वाहन, जनरेटर, कचरा जलाना, निर्माण गतिविधियां आदि। मंत्रालय द्वारा वर्ष २००९ में राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता प्रबोधन हेतु नये मानक जारी किये थे जिनमें नये प्रदूषकों को भी सम्मिलित किया गया है। ताकि इसका मापन राष्ट्रीय स्तर पर प्रारंभ किया जा सके। यद्यपि इन मानकों को प्राप्त करने के लिये विस्तृत कार्य योजना की आवश्यकता हैं। तथा इसका प्रभावी कार्यान्वयन भी उतना ही आवश्यक है। वर्तमान में प्रस्तावित कार्य योजना के प्रमुख बिन्दु निम्न है :-

01- वायु गुणवत्ता प्रबोधन नेटवर्क:- वर्तमान में राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता प्रबोधन कार्य में ऑटोमेटिक व मेनुअल दोनों तरह से प्रबोधन किया जा रहा है। भारत के ३०७ शहरों में लगभग ७०३ स्थानों पर प्रबोधन किया जा रहा है जिसे बढ़ाकर सभी ६५४ जिले में विस्तारित किये जाने की योजना है। सतत निगरानी हेतु सतत वायु गुणवत्ता प्रबोधन उपकरण की स्थापना की जा रही है। वर्तमान में देश के ६८ शहरों में यह प्रबोधन सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के साथ किया जा रहा है। जिसे बढ़ाकर १०२ शहरों में किया जाना है।

02- राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता सूचकांक (AQI):- राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता सूचकांक की गणना के लिए उक्त शहर में जगह-जगह निगरानी केंद्र लगाए गए है जो निरंतर (सतत) परिवेशीय वायु गुणवत्ता प्रदूषण के स्तर पर नजर रखें है। इससे शहरों में वायु प्रदूषण को नियंत्रण और जनता को जागरूक बनाने में मदद मिलेगी। आम लोग आसानी से समझ सकें कि उनके शहर की हवा में कितना प्रदूषण है, यह समझाने के लिए इस सूचकांक में अलग-अलग रंगों की श्रेणियां दी गईं है जिन्हे नीचे चित्र के माध्यम से बताया गया है| उदाहरण के लिए अगर किसी शहर की हवा हरे रंग की श्रेणी में है तो वह स्वास्थ्य के अनुकूल है लेकिन यदि वह लाल श्रेणी में है तो वह स्वस्थ लोगों पर भी प्रतिकूल असर डाल सकती है।

03- सतत उत्सर्जन प्रबोधन सिस्टम (CEMS):- केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा लगभग ३००० अति प्रदूषित उद्योगों में सतत निगरानी सिस्टम की संस्थापना की है जहॉ जल व वायु गुणवत्ता का लगातार प्रबोधन किया जाता है तथा लगभग २५०० उद्योगों से लगातार डाटा भी प्राप्त हो रहा है। यह निगरानी व्यवस्था उद्योगों द्वारा स्वयं प्रबोधन कर अपने डाटा के आधार पर प्रदूषण नियंत्रण किये जाने की संकल्पना पर आधारित है।

04- उत्सर्जन मानक:- सरकार द्वारा २० तरह के औद्योगिक क्षेत्र में प्रदूषण उत्सर्जन मानकों को कड़ा किया है तथा उत्सर्जन के नियमों को अन्र्त राष्ट्रीय स्तर के नियमों के अनुसार बनाया जा रहा है। वायु प्रदूषण के नियंत्रण हेतु सीमेंट व ताप विद्युत गृह के उत्सर्जन नियमों को कड़ा किया गया है तथा सल्फर डाई ऑक्साईड व नाईट्रोंजन डाई ऑक्साईड के नये उत्सर्जन मानक जारी किये गये है।

05- वाहन उत्सर्जन मानक:- शहरी क्षेत्रों में वाहनों से होने वाले प्रदूषण को नियंत्रित करने हेतु ०१ अप्रैल २०१७ से भारत - ४ उत्सर्जन नियम लागू किये गये है तथा वर्ष २०२० तक भारत - ६ नियम लागू किये जाने का प्रस्ताव है।

06- श्रेणीबद्ध कार्य योजनाः- शहरी प्रदूषण विद्गोष रूप से दिल्ली राजधानी क्षेत्र में वायु प्रदूषण कम करने के उद्देद्गय से श्रेणीबद्ध कार्य योजना प्रारंभ की गई है जिसमें ए.क्यू.आई. के आधार पर गतिविधियों को नियंत्रित किया जाता है तथा प्रदूषण नियंत्रण हेतु जानकारी प्रदान की जाती है।

07- गैर-प्राप्ति शहरों (non-attainment cities) की कार्य योजनाः- भारत सरकार के द्वारा शहरी क्षेत्र में प्रदूषण नियंत्रण हेतु हर शहर की स्थानीय स्तर पर योजना बनाई हैं। इसमें वर्तमान में १०२ शहरों की प्रदूषण नियंत्रण की कार्य योजना बनाये जाना प्रस्तावित है। जिसमें से ७३ शहरों की कार्य योजना तैयार की जा चुकी है। गैर-प्राप्ति वाले शहरों में उन मानकों को लिया जाता है जहां पर वायु गुणवत्ता राष्ट्रीय परिवेश वायु गुणवत्ता की मानकों से भी खराब स्थिति में है।

08- उपग्रह के माध्यम से प्रबोधन:- उपग्रह के माध्यम से किसी क्षेत्र में सुक्ष्म धुल के कणो की सद्ररता का मापन किया जाना प्रस्तावित है जिससे व्यापक स्तर पर डाटा प्राप्त किया जा सक्रेगा ।

09- विस्तृत कार्य योजनाः- दिल्ली राजधानी क्षेत्र में वायु प्रदूषण को दूर करने के लिये विस्तृत कार्य योजना बनाई गई है। इसमें कुल ५५ संस्थानों पर प्रदूषण नियंत्रण की विभिन्न दायीत्व दिये गये है तथा सभी को अपने-अपने कार्य क्षेत्र में नियमो के अनुपालन का अनुरोध किया गया है ।

पर्यावरण मंत्रालय के अनुसार शहरी क्षेत्र में धूल प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है, जिस पर नियंत्रण करने मात्र से वायु प्रदूषण में भारी कमी लाई जा सकती है। दिल्ली-एनसीआर व अन्य शहरों में बड़े पैमाने पर होने वाली निर्माण गतिविधियों से भी वायु प्रदूषण बढ़ता है।केंद्र ने हवा में धूल के कणों को रोकने के लिये नियमों को अधिसूचित किया है, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. निर्माण स्थलों से जुड़ी सड़कों को पक्का किया जाना अनिवार्य होगा।
2. धूल कणों में कटौती करने वाले उचित उपायों के अभाव में मिट्टी की खुदाई नहीं की जाएगी।
3. मिट्टी का ढेर या बालू या निर्माण मलबा या किसी प्रकार की निर्माण सामग्री को खुले में नहीं छोड़ा जाएगा।
4. इमारत की ऊँचाई के एक-तिहाई आकार के बराबर और अधिकतम दस मीटर की ऊँचाई तक के विंड-ब्रेकर उपलब्ध कराए जाएंगे।
5. धूल कणों में कटौती करने के उपायों को निर्माण स्थल पर स्पष्ट रूप में प्रदर्शित करना होगा, ताकि लोग उसे आसानी से देख सकें।

इन सभी प्रयासो का को अगर प्रभावी रूप से लागू किया जाए तो सकारात्मक प्रभाव देखने को मिल सकते है तथा कई राज्य सरकारों ने भी इसी क्रम में अपने- अपने राज्यों के शहरों में भी मे इसी तरह के नियमों को लागू करने की प्रतिबद्धता जताई है ताकि जन सहयोग के माध्यम से प्रदूषण के स्तर मे कमी की जा सके।

स्वच्छता तकनीकें एवं अपशिष्ट प्रबंधन के 5-R सिद्धांत

श्री संजय कुमार मुकाती,वरीष्ठ वैज्ञानिक सहायक
क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल

देशभर में प्रति वर्ष 62 मिलियन टन कचरा उत्पन्न होता है, जिसमें से 5.6 मिलियन टन प्लास्टिक कचरा, 0.17 मिलियन टन जैव चिकित्सा अपशिष्ट, 7.90 मिलियन टन खतरनाक अपशिष्ट और 15 लाख टन ई-कचरा है। भारतीय शहरों में प्रति व्यक्ति 200 ग्राम से लेकर 600 ग्राम तक कचरा प्रतिदिन उत्पन्न होता है। प्रतिवर्ष 43 मिलियन टन कचरा एकत्र किया जाता है, जिसमें से 11.9 मिलियन टन संसाधित किया जाता है और 31 मिलियन टन कचरे को लैंडफिल साइट में डाल दिया जाता है। नगर निगम अपशिष्ट का केवल 75-80 प्रतिशत ही एकत्र किया जाता है और इस कचरे का केवल 22-28 प्रतिशत संसाधित किया जाता है। उत्पन्न होने वाले कचरे की मात्रा मौजूदा 62 लाख टन से बढ़कर वर्ष 2030 में लगभग 165 मिलियन टन तक पहुँचने की संभावना है।

कचरा क्या हे ? जो अनुपयोगी हो कचरा है !

रीसायक्लिंग इस दिशा में उठाया गया बेहतरीन कदम साबित हो रहा है। कचरा निस्तारण, रीसायक्लिंग, कचरे से ऊर्जा उत्पादन इन सभी को कचरा प्रबंधन या वेस्ट मैनेजमेंट कहा जाता है। रीसायक्लिंग से कई उपभोक्ता वस्तुएं बाजार में दोबारा उपलब्ध हो जाती है जो कि प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में कमी ला रही है। एल्युमिनियम, तांबा, स्टील, कांच, कागज और कई प्रकार के प्लास्टिकों की रीयासक्लिंग की जा सकती है। धातुओं की रीसायक्लिंग करने से मांग के अनुरूप कई वस्तुएं बाजार में उपलब्ध हो जाती है और खनन में कमी आती है।

कागज को रीसायकल कर कम से कम उतने और पेड़ों को तो कटने से रोका जा सकता है। वहीं कचरा निस्तारण में घरों से निकले आर्गेनिक कचरे को बायो कंपोस्ट और मीथेन गैस

में बदल कर लोगों द्वारा उपयोग किए गए खाद्य पदार्थों का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित किया जा रहा है। मीथेन गैस जहां ऊर्जा का बेहतरीन स्रोत है वहीं जैविक खाद मिट्टी की ऊर्वरता को स्वाभाविक रूप से बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण है। यह किसानों की कृत्रिम खाद पर निर्भरता को भी कम करती है। जैविक खाद से बने उत्पादों की बाज़ार में अच्छी खासी कीमत मिलती है।

<u>अपशिष्ट के प्रकार ठोस अपशिष्</u>

जैविक विघटनशील अपशिष्ट (सड़ने वाला कचरा)	अजैव विघटनशील अपशिष्ट (न सड़ने वाला कचरा)
कागज, अखबार, पुठ्ठा सब्जियों/फलों इत्यादि का बचा हुआ भाग, नारियल की जटाएँ, चढ़ाए गए फूल–पत्तियाँ, चाय पत्ती इत्यादि। मांसाहारी कचरा रसोईघर का कचरा राख, कोयला घर की साफ सफाई से निकला कचरा कृषि जनित घरेलू–कचरा	प्लास्टिकः पॉलिथीन, वस्तुओं के ड़िब्बें, दूध की थैलियाँ, प्लास्टिक की बॉटल/टूटी हुई वस्तुएँ, खाली टूथपेस्ट धातुः बेकार का लोहा – लंगड़,औषधि/भोजन पदार्थ के लिए उपयोग में आने वाले एल्यूमिनियम के रैपर, जैसे कि टेटा पैक/ चिप्स के रैपर कॉचः बोतल तथा कॉच के टुकड़े लकडी, कपड़ा चमड़ाः टूटी चप्पलें, बैग इत्यादि। रबरः स्लीपर्स विद्युत सामग्रीः वायर,खराब बैटरी/ इलेक्टॉनिक कचरा कृषि किटनाशक के खाली डिब्बे

समाधान क्या है.. परिहार (Avoidance) और कटौती तरीके :-

अपशिष्ट प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण तरीका अपशिष्ट रचना की रोकथाम है जिसे अपशिष्ट कटौती भी कहा जाता है परिहार इसमे से एक तरीका शामिल हैं इस्तमाल किए हुए उत्पादों का पुनः प्रयोग, नयी वस्तुएं खरीदने के बजाय टूटी वस्तुओं की मरम्मत, उत्पादों की ऐसी रचना करना की उसे दुबारा भरा या प्रयोग किया जा सके (जैसे की प्लास्टिक की जगह कपास के थैले), उपभोगताओं को निर्वर्त्य उत्पादों का प्रयोग ना करने के लिए प्रोत्साहित करना और एसे उत्पादों की ऐसी रचना करना जो कम सामग्री का प्रयोग कर के उतना ही अभिप्राय संपादित कर पायें (उदाहरण स्वरुप, पेय के लिए टीन के डब्बों को हल्का कर देना)

मेरे अनुसार पर्यावरणीय समास्याओं का हल ..रीसायकल नहीं ..रियूज करने में हे

5 - आर का सिधांत .....अपनाना होगा ।

1: रिफ्यूज :-

जिस सामान की हमें जरूरत न हो और ना ही पढ़ने वाली हो उसे मुफ्त में मिलने पर भी ना लें जैसे मीटिंग सेमिनार में प्लास्टिक फोल्डर,पेन,बिजनिस कार्ड या विज़िटिंग कार्ड,प्लास्टिक बेग आदि

2: रिड्यूस्ड (कम) :-

कुछ चीज़ों का उपयोग आवश्यक होता हे पर इसे कम किया जा सकता हे . इसके लिये पूर्व के अनुभवों से सबक लें ..इन पर होने वाले रुपये और समय के व्यय पर विचार करें।

3: रियूज (पूनरूप्योग) :-

जिन समानों के उपयोग से नहीं बचा जा सकता उनकें दोबारा उपयोग की आदत डालें एक बार उपयोग के बाद बेकार हो जाने वाले सामानों को खरीदने से बचें यूज़ एंड थ्रो की मानसिकता को छोड़ें ।

4: रीसायकल (पुनर्दोहन):-

किसी भी सामान के पुनर्दोहन की आदत डालें जेसे कागज के दोनों और लिखेँ फिर फेंकने की बजाए रद्दी में बेचें

5: रिकवर एनर्जी (कम्पोस्टिन्ग):-

गीला सूखा कचरा अलग रखना इलेक्ट्रानिक वेस्ट अलग रखना और इनका वेज्ञानिक तकनीक से डिस्पोज करना अर्थात नष्ट करना।

अपशिष्ट प्रबंधन अवधारणाये:-

अपशिष्ट प्रबंधन की अनेक अवधारणाये है जो उनके उपयोग के हिसाब से शहर और क्षेत्रों में अलग अलग होतीं हैं कुछ सर्वाधिक सामान्य, व्यापक रूप से प्रयोग की गई अवधारणाओं में शामिल हैं:

- अपशिष्ट पदानुक्रम - अपष्टि पदानुक्रम से सन्दर्भित है "3 Rs" लघु, पुनः प्रयोग (reuse) और पुनः चक्रं (recycle), जो अपष्टि प्रबंधन नीतियों को अपष्टि लघु (waste

minimization) की उनकी वांछनीयता के अनुसार वर्गीकृत करता है अपशिष्ट पदानुक्रम अधिकतम अपष्टि लघु नीतियों की आधारशिला बनी हुई है अपशिष्ट पदानुक्रम का लक्ष्य इन वस्तुओं से अत्यधिक प्रयोगात्मक मुनाफा पाना और न्यूनतम अपष्टि की रचना करना है .

विस्तारित निर्माता जिम्मेदारी (Extended producer responsibility)

- विस्तारित निर्माता जुम्मेदारी एक नीति है जो उत्पाद के जीवन चक्र संबन्धित खर्चों एवं उसके (उत्पाद के) जीवन समाप्ती उपरांत निपटान को उसके बिक्री मूल्य मे एकीकृत करने निर्माता की जुम्मेदारी का उद्देश्य है बाजार उत्पाद को उपभोग उपरांत उसके समुचित निपटान के लिए एक नीति है जो विस्तारित उत्पादों के पूरे जीवन चक्र और डिब्बाबंदी पर जवाबदारी लागू करना इसका अर्थ है की जो भी फ़ार्मे उत्पाद आयातित और या बिक्री करती है उन्हे उसके उपयोगी जीवन के उपरांत एवं उस उत्पाद के दौरान उन उत्पादों के लिए जुम्मेदार होने की अवश्यकता है।
- प्रदूषण करने वाला भुगतान करेगा सिद्धांत - प्रदूषण करने वाला भुगतान करेगा यह सिद्धांत एक ऐसा सिधांत है जिस के अंतर्गत प्रदूषण करने वाला वातावरण पर कु-प्रभाव के अनुसार भुगतान करता है अपशिष्ट प्रबंधन के संदर्भ में इस की सम्मति आम तौर पर अपष्टि जनक की आवश्यकता की ओर है जो उचित अपष्टि निपटान का भुगतान करता है ।

निष्कर्ष :-

भारत का अपशिष्ट प्रबंधन संकट नियंत्रण से बाहर बढ़ रहा है। ज्यादातर विशेषज्ञ अब इस पर विश्वास करना शुरू कर रहे है कि हम कचरे में डूब सकते हैं। भय उत्पन्न करने वाले विचार एक तरफ, अलगाववादी विचार एक तरफ, एक एकजुट कचरा प्रबंधन योजना की कमी और सुस्त कचरा निपटान प्रणाली के दृष्टिकोण के कारण हम एक बड़ी चुनौती की कगार पर पहुँच गए हैं। इसके लिए पर्यावरणीय नियम सख्ती से पालन कराने होंगे। यही समय है कि हम वास्तविक रूप से जागरूक हों और इसका सामना करें।

दीर्घोपयोगी विकास की संकल्पना

श्री राजीव शर्मा, वरिष्ठ तकनीशियन, क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल
श्री प्रहलाद बघेल, क्षेत्रीय निदेशालय, भोपाल

मानव ने आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण उन्नति की है, विशेषकर पिछली दो सदियों में, विकास तथा सुख-साधन वाली जीवन शैली को निर्मित करने में बहुत सफलता पाई है। दुर्भाग्य से यह भौतिक विकास हमारे पर्यावरण को नकारने की कीमत पर हुआ है, जिससे सम्पूर्ण मानवता का भविष्य व सुख-समृद्धि ही दांव पर लग गए है क्योंकि मानव द्वारा प्रकृति का अत्यधिक दोहन, पर्यावरण को विनाश की ओर ले जा रहा है।

शहरों, इमारतों, फैक्ट्रियों व शौपिंग मौलों के निरंतर निर्माण व विकास के लिए, जिस कृषि की भूमि को निरंतर प्रयोग में लाया जा रहा है, उसे बचाने का क्या कोई उपाय नहीं है? क्या सघन किस्म की कृषि (जिसमें कम से कम भूमि में अत्यधिक कृषि विकास का प्रयत्न रहता है) का सारे वर्ष करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है? क्या जीवाश्म ईंधनों के निरंतर दोहन एवं उपयोग पर कोई रोक नहीं होनी चाहिए?

दीर्घोपयोगी विकास की संकल्पना का उदभव (शुरुआत)

सन 1992 में रियो दी जेनेरियों में संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित पर्यावरण व विकास के सम्मेलन (पृथ्वी_सम्मेलन) में विश्व भर के नेताओं ने मौसम में बदलाव व जैविक विविधता के प्रमुख मामलों पर आम सहमति बनायी थी। इस सम्मेलन के पश्चात 'रियो सम्मेलन' नामक एक घोषणापत्र जारी किया गया जिसका यह उद्देश्य था कि इक्कीसवीं सदी में पूर्ण रूप से दीर्घोपयोगी विकास किया जा सके। अतः इस तथ्य की उत्पत्ति इस सम्मेलन में हुई।

वहन क्षमता की संकल्पना

विकास के लिए माल और अन्य सेवायों के निर्माण की आवश्यकता है- जिसके लिए साधनों की आवश्यकता होती है। ये साधन मुख्यतः प्रकृति द्वारा प्रदत्त हैं और इन्हें 'प्राकृतिक संसाधनों' का नाम दिया जा सकता है। हमें शीघ्र ही प्रकृति का सम्मान करना सीखना होगा और उपलब्ध साधनों का न्यायपूर्ण एवं ज़िम्मेदारी से प्रयोग करना होगा। ऐसा न करने पर हमारी आगामी पीढ़ियाँ इन प्राकृतिक संसाधनों से वंचित हो जाएंगी, जिसके फलस्वरूप इस पृथ्वी का भविष्य ही अंधकारमय हो जाएगा।

हमारे पर्यावरण की वर्तमान दयनीय स्थिति के मूल कारण हैं- विकास के नाम पर प्राकृतिक संपदा का अनियोजित, अतिदोहन तथा जनसंख्या की अतिशय वृद्धि।

लोगों की सुख-समृद्धि के लिए आर्थिक विकास अति आवश्यक है; हालांकि इससे पर्यावरण की क्षति व विनाश हुआ है। आर्थिक विकास के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों का बढ़ता प्रयोग रोका नहीं जा सकता। बढ़ती हुई जनसंख्या को भी इन संसाधनों की अधिक आवश्यकता रहेगी । परंतु इस स्थिति में प्रमुख प्रश्न यह आता है की हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का सही ढंग से प्रयोग कैसे करें? क्या हम इन साधनों का इतना विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग कर सकते हैं कि हम उनका सही संरक्षण व बचाव कर पाएँ? क्या हम अभी भी कुछ वैकल्पिक एवं गैर परंपरागत साधनों कि खोज व विकास कर सकते हैं? क्या इन वैकल्पिक साधनों का पुनरुत्पादन कर सकते हैं? यह हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी आगामी पीढ़ियों को एक साफ व सुचारु वातावरण प्रदान करें इसीलिए यह हमारा उत्तरदायित्व हो जाता है कि हम इस संपदा को उसकी प्रयुक्त होने कि क्षमता अर्थात 'वहन क्षमता' से अधिक शोषण न करे- व उसके संतुलन को बनाए रखें।

वहन क्षमता कि संकल्पना को गाड़ी या बस जैसे जनपरिचित परिवहन के उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है। एक गाड़ी कि अधिकतम भर उठाने की क्या क्षमता होती है? यह गाड़ी कितने अधिकतम लोगों का भर उठा सकती है- जिसके अंतर्गत वह सुचारु ढंग से लड़क पर दौड़ सकती है। अगर इसकी वहन क्षमता से अधिक लोग इस गाड़ी में बैठेंगे, तो यह

गाड़ी सड़क पर दौड़ते समय टूट जाएगी। अर्थात जिस प्रकार एक वाहन की अधिकतम भर सहने की एक सीमा होती है। ठीक इसी प्रकार से पर्यावरणीय संपदा के प्रयोग की भी एक सीमा होती है। अतः इस तथ्य को एक प्रणाली की अधिकतम भार सहने की क्षमता के रूप में देखा जा सकता है।

उसी तरह पर्यावरण की भी एक क्षमता है कि लगातार उपयोग करने के दबाव को एक सीमा तक सहन करे । यह वहन क्षमता प्राकृतिक संसाधनों के अधिक मात्रा में निकाले जाने से सीमित होती जाती है । बदले में यह अधिकतम मात्रा में प्रदूषण के निष्कासन के रूप में उभर कर आती है । यदि अत्यधिक मात्रा में संसाधनों का निष्कर्षण अथवा उपयोग किया जाय अथवा अवशोषित करने की क्षमता से अधिक मात्रा में प्रदूषकों से भर दिया जाय तो पर्यावरण का भयंकर विनाश हो सालता है। यदि एक बार पर्यावरण क्षतिग्रस्त या नष्ट हो जाये तो उसको सुधारणा कठिन है । पर्यावरण अपनी शुद्ध स्थिति या उपयोग करने वाली अथवा हानिरहित अवस्था में आने वाली क्षमता को खो बैठेगा । इस प्रकार पर्यावरण की वहन क्षमता को परिभाषित इस प्रकार किया जा समता है, वह क्षमता जो पर्यावरण के अधिकतम उपयोग या उस पर आर्थिक अथवा अन्य मानवीय क्रियाकलापों के भार अथवा दबाव को सहन कर सकती है ।

दीर्घोपयोगी विकास (SUSTAINABLE DEVELOPMENT)

दीर्घोपयोगी विकास की माँग है कि प्राकृतिक सम्पदा के प्रयोग व उपभोग की मात्रा में समन्वय हो । एक ऐसी दर जिसमे इन संसाधनों का या तो कोई विकल्प हो सकता है अथवा इन्हें बदला जा सकता है । आर्थिक और औद्योगिक विकास इस तरह से होने चाहिए, जिससे पर्यावरण कि कोई भी ऐसी क्षति य हो जो सुधारी न जा सके । पर्यावरण व विकास के विश्व आयोग ने दीर्घोपयोगी विकास की निम्नलिखित परिभाषा दी है- दीर्घोपयोगी विकास एक ऐसा विकास है जिससे न

केवल वर्तमान की आवश्यकताएँ पूरी होती है बल्कि आगामी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता भी बनी रहती है ।

यह परिभाषा दो महत्वपूर्ण बातों को उजागर करती है पहली, यह प्राकृतिक संसाधन न केवल हमारे वर्तमान के जीविकोपार्जन के लिए जरूरी है, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के जीविकोपार्जन के लिए भी उतने ही आवश्यक हैं । दूसरी, वर्तमान की किसी भी विकास-संबंधी क्रिया या कार्यक्रम को करते समय उसके भविष्य में आने वाले परिणामों को ध्यान से रखना आवश्यक है । जैसे कि पहले भी कहा जा चुका है, गैर-दीर्घोपयोगी विकास के मुख्य कारण हैं - निरंतर बढ़ती जनसंख्या तथा प्राकृतिक संसाधनों का निरंकुश दोहन । विकासशील देशों में प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग मुख्यत: मानव जनसंख्या के लिए भोजन, चारा, लकड़ी और निवास संबंधी जरूरतों को पूरा करने में जाता है । मानवी क्रियाकलाप, जैवमंडल के संपोषण को लगातार प्रभावित करती रहती हैं । मुख्य रूप से यह कहा जा सकता है कि जीवन-स्तर में वृद्धि लाने वाली सभी मानवीय गतिविधियाँ पर्यावरण को प्रभावित करती हैं । इन गतिविधियों में आवश्यकता से अधिक मछ्ली पकड़ना, कृषि, शुद्ध जल की आपूर्ति का एक सीमा से अधिक प्रयोग, जंगलों को काटना व औद्योगीकरण शामिल हैं । ये पर्यावरणीय अवक्रमण एवं सामाजिक तनाव का कारण है जिसके पारितंत्र में नकारात्मक परिवर्तन आ जाते हैं ।

पर्यावरण की दृष्टि से संपोषित समाज वह है जो लोगों की वर्तमान की आवश्यकताएं जैसे वर्तमान की खाद्य सामग्री, शुद्ध हवा, शुद्ध पानी व निवास-स्थलों का प्रयोजन जो भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कोई समझौता नहीं करने की क्षमता रखे ।

एक सत्य घटना

ब्राज़ील देश के ऐमेजोन बेसिन के वर्षा वन में चीको नमक एक व्यक्ति (सन 1944 में पैदा हुआ) रहता था और सुख से जीवन जीता था। इसने अपने पिता से विरासत के रूप में तकरीबन सौ जंगली रबड़ के वृक्षों को पाया था, जिससे इसकी रोजी-रोटी चलती थी। चीको प्रतिदिन बड़ी सावधानी से इन वृक्षों के कुछ भागों को काटकर इस प्रकार लैटेक्स (रबड़) को

इकट्ठा करता था। जिससे इन वृक्षों को कोई नुकसान न पहुंचे। वह इस वन-संपदा से गिरि वाले फल, अन्य फल तथा अन्य प्राकृतिक सामग्री को इकट्ठा करता था।

इस बीच कुछ जमीन के सौदेबाज इस जगह पर आए तथा जल्द से जल्द मुनाफा कमाने के उद्देश्य से इन वनों को काटने लगे- ताकि इस भूमि को मवेशियों के लिए उपयोग में लाया जा सके। वृक्षों से प्रदत्त किसी बचाव के बिना, यह भूमि कमजोर पद गई तथा भरी वर्षा के कारण भूमि में विद्यमान सारे पोषक तत्व बह गए। इससे यह भूमि इतनी ऊसर हो गई की इस पर घास भी उग न पाई फलस्वरूप इस पर चरने वाली एक भी गाय को पोषण नहीं मिल पाया। इसी बीच ब्राज़ील सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय फंड (अनुदान) की मदद से इस जमीन पर बड़े पैमाने पर सड़कों का निर्माण कर दिया। चीको और उसके साथियों ने इसका विरोध किया। उन्होने अपनी सरकार को इस बात के लिय मजबूर किया की वे इस वन का और अधिक शोषण रोकें तथा इसे एक संरक्षित स्थल घोषित करें। यह बात सौदेबाज़ों को बिल्कुल रास न आई और सन 1988 में उनके लोगों ने चीको की जान ले ली। इस स्थिति के लिए राजनीति, अर्थव्यवस्था व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार प्रणाली तीनों जिम्मेदार हैं। घटना का पहला भाग दीर्घोपयोगी विकास का वह उदाहरण है जिसमे अगली पीढ़ी की चिंता है जबकि घटना का दूसरा भाग गैर-दीर्घोपयोगी विकास का उदाहराण है जिसमें भविष्य या अगली पीढ़ी की कोई चिंता दिखाई नही देती है।

अपशिष्ट प्रबंधन के आयाम

श्रीमती मीनल गुप्ता जे.आर.एफ.
केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, वडोदरा, गुजरात

विकास के साथ आवश्यकताओं का जन्म, आवश्यकताओं के लिए उत्पादन, उत्पादन से उपयोग एवं उपयोग से अपशिष्ट का जन्म होता है। आज विकास की दौड़ मे अपशिष्ट प्रबंधन एक विकराल रूप धारण करता प्रतीत हो रहा है। परंतु अपशिष्ट को नियंत्रित करना मनुष्य के हाथ में ही है। अगर स्वच्छतापूर्वक और जागरूकतापूर्वक अपशिष्ट प्रबंधन किया जाए तो इस कार्य में अवश्य ही सफलता प्राप्त की जा सकती है।

घरेलु और औधोगिक अपशिष्ट का निरंतर उपयोग, पूरे संसार में एक समस्या का विषय बन रहा है। जैसे-जैसे जनसंख्या और मनुष्य के रहन-सहन में वृद्धि हो रही है, वैसे-वैसे ही अपशिष्ट के अलग अलग तरीक़े से पैदा होने मे भी वृद्धि हो रही है। यही प्रक्रिया चलती रही तो वो दिन दूर नहीं जब यह सुंदर हरी-भरी धरती अपशिष्ट के ढेर में परिवर्तित हो जाएगी।

भारत जैसे विकासशील देशों में शहरीकरण में निरंतर विस्तार हो रहा है। इसी कारण शहरों में बढ़ते हुए प्लास्टिक और पेकेजिंग सामग्री के उपयोग से, अजैव प्रदूषित अपशिष्ट का उत्पादन बढ़ता ही जा रहा है। जबकि गाँवों में जैव प्रदूषित अपशिष्ट बढ़ रहा है। इन सभी अपशिष्ट के प्रबंधन के लिए भारत सरकार ने विभिन्न नियम और अधिनियम बनाए हैं जिनका अनुपालन करना प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्तव्य है।

कई प्रकार के अपशिष्ट उत्पादित होते है, जिसमें मुख्य अपशिष्ट एवं उनसे संबंधित नियमों का विवरण नीचे दी गयी तालिका में अंकित किया है:

क्र.सं	**अपशिष्ट**	**संक्षिप्त विवरण**	**भारत में लागू किए गए नियम**	
			पूर्व	**संशोधित**
१.	ठोस अपशिष्ट	खाध अपशिष्ट, किचन अपशिष्ट, सब्ज़ियों एवं फल अपशिष्ट	नगरीय ठोस अपशिष्ट (प्रबंधन और हथालन) नियम-२०००	ठोस अपशिष्टप्रबंधन नियम-२०१६
२.	प्लास्टिक अपशिष्ट	प्लास्टिक बैग, प्लास्टिक बोतल	प्लास्टिक अपशिष्ट (प्रबंध और प्रहस्तन) नियम-२०११	अपशिष्ट प्लास्टिक नियम-२०१६

३.	जैव चिकित्सा अपशिष्ट	जीव शारीरिक अपशिष्ट, अवसित दवाइयाँ, रासायनिक अपशिष्ट	जैव चिकित्सा अपशिष्ट (प्रबंधन और हथालन)नियम-१९९८	जैव चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन नियम-२०१६
४.	ई-अपशिष्ट	त्याग किए हुए इलेक्ट्रॉनिक उपकरण	ई-अपशिष्ट (प्रबंधन और हथालन) नियम-२०११	ई-अपशिष्ट (प्रबंधन) नियम-२०१६
५.	परिसंकटमय और अन्य अपशिष्ट	धातु और धातु युक्त अपशिष्ट, कार्बनिक और अकार्बनिक अपशिष्ट	परिसंकटमय अपशिष्ट (प्रबंधन, प्रहस्तन और सीमापारीय संचलन) नियम-२००८	परिसंकटमय और अन्य अपशिष्ट (प्रबंध और सीमापार संचलन) नियम-२०१६

अपशिष्ट निपटान के लिए भिन्न-भिन्न विधियों के प्रयोग किया जाते है। भूमि-भरण स्थल, भस्मिकरन और काम्पोस्टिंग अपशिष्ट के निपटान के लिए मुख्य विधियाँ है। अपशिष्ट प्रबंधन के मूल सिद्धांत लघु, पुन: प्रयोग और पुन: चक्रण है, जिनका मुख्य उद्देश्य अपशिष्ट को न्यूनतम सीमा तक लाना है। 'लघु' से तात्पर्य है कि अपशिष्ट का उत्पादन कम से कम हो अर्थात् मनुष्य रोज़ की दिनचर्या को इस प्रकार संतुलित करे जिससे अपशिष्ट का उत्पादन न्यूनतम हो। 'पुन: प्रयोग' से तात्पर्य है कि किसी भी वस्तु का एक बार उपयोग करने के बाद पुन: उसका उपयोग किया जाए ताकि वह वस्तु अपशिष्ट के रूप में प्रयोग ना हो। 'पुन: चक्र' से तात्पर्य है कि अपशिष्ट वस्तुओं का उपयोगी वस्तुओं में निर्माण करके उसका पुन: उपयोग किया जाए।

अत: लघु, पुन: प्रयोग और पुन: चक्रण नितियों का प्रयोग करके अपशिष्ट प्रबंधन को प्रभावी किया जा सकता है। अपशिष्ट प्रबंधन पर नियंत्रण के लिए भारत सरकार ने 'स्वच्छ भारत अभियान' और 'स्मार्ट सिटी मिशन' जैसी योजनाएँ शुरू की हैं। भारत जैसे विकासशील देश के लिए एक सक्षम अपशिष्ट प्रबंधन और उसका समयानुसार पालन अति आवश्यक है, परंतु इसके अतिरिक्त नागरिकों को भी अपने निजी स्वार्थ को त्याग करके अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति सतर्कता और समझदारी दिखानी होगी।

ठोस अपशिष्ट को कम करने एवं नष्ट करने के लिए नगरपालिका द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रबन्ध किये गए है, जिसके अंतर्गत अपशिष्ट पदार्थो का निपटान, पुनर्चक्रण, निकास एवं भस्मीकरण आदि पद्वतियो का सहारा लिया गया है| पर्यावरण को सुरक्षित रखने एवं मानव स्वास्थ्य हेतु ठोस अपशिष्ट का प्रबंधन अनिवार्य है, इसीलिए सरकार द्वारा इस दिशा में विभिन्न प्रयास किये जाते है| ठोस अपशिष्ट को नष्ट करने के लिए जिन प्रणालियों का उपयोग किया जता है, वह इस प्रकार है:-

- कचरे को विभिन्न स्थानों से इकठा करके उसका निपटान किया जाता है|
- ठोस अपशिष्ट पदार्थो को नष्ट करने के लिए भस्मीकरण प्रणाली के द्वारा जलाकर राख कर दिया जाता है|
- प्लास्टिक एवं कांच की बोतलों को पुन:परिष्करण प्रणाली के द्वारा फिर से उपयोग के काबिल बनाया जाता है|
- गीले कचरे एवं खाद्य अपशिष्ट एवं जैविक अपशिष्ट पदार्थो को मिलाकर जैविक खाद तैयार की जाती है, जो मिटटी को उपजाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है|